ढेर लगा उसे देख देख के प्रसन्न हुए थे।

इस युद्ध में विजय प्राप्त होने पर भी अबदली ने बहुत कुछ हानि सही। उत्तर भारत ने मुसलमानों की जय के परिणाम से कोई लाभ न उठाया। दिल्ली के गौरव की बात तो एक ओर रही, वरन दिल्ली के बादशाही घराने की दिनोदिन अवनति होने लगी। भारत के पूर्व भाग में अङ्गरेज़, दक्षिण में हैदरअली और पञ्जाब में सिक्खों की बढ़ती हुई।

इस दुर्घटना से मरहठों को बड़ी हानि सहनी पड़ी थी। उनके मुखिया मुखिया सेनापति और लाखों वीर योद्धाओं ने वीरलोक में प्रयान किया। पानीपत की समरभूमि में मरहठों के मुखिया सेनापति और सामन्तों ने अपने देश और धर्म्म के लिये अपने प्राण न्योछावर कर दिए। एक भी ऐसा वंश या घर न बचा जिसमें विलाप और रोने की ध्वनि न हुई हो। बालाजी बाजीराव और उनके जेठे पुत्र विश्वासराव और उनके चचेरे भाई भाऊ साहेब भी इसी युद्ध में मारे गए। यह दुखदाई समाचार को सुन बालाजी का कलेजा टूट गया अपने चचेरे भाई के बिरह से व्याकुल अपने जातिवालों का रोना पीटना देख सुन वह ऐसे व्यथित हो गए कि थोड़े ही दीनों के उपरान्त इस असार संसार से विदा हो गए। ऐसे दूरदर्शी मुखिया की मृत्यु से महाराष्ट्र समाज की मानों कमर टूट गई।

इस युद्ध में महाराष्ट्रों की सब सम्पत्ति के नाश होने, अनगिनत वीरों के मरने और लड़ाई के सामानों के चले जाने पर अब तक उन बातों की याद से हृदय दहल जाता है। सन्देह नहीं है कि ऐसी हानि यदि और किसी जाति को होती तो वह समाज एक बारही मटियामेट हो जाता। पर उनके हृदय में हिन्दू जाति और धर्म्म का जो अंकुर फूट चुका था इसीसे वे जग में जीते रहे। पानीपत के संग्राम में उनके भाग्यभानु के अस्त हो जाने के कारण कुछ दिनों तक तो वे मरे से पड़े रहे। पर पानीपत के संग्राम के पांच ही महीने के उपरान्त असाधारण अध्यवसाय के प्रताप से दिल्ली के चहुं ओर फिर मरहठे अपनी अमलदारी जमाने में प्रवृत्त हो गए, जिसे देख सुन मुसलमान परम चकित हो गए।

बालाजी बाजीराव के मर जाने से महाराष्ट्र समाज में कोई मुखिया सिरधरू न रहा, इसीसे पूना में परस्पर अनबनत हो फूट की बेल फैल गई। बालाजी के दूसरे चचेरे भाई रघुनाथराव (दादा जी), दूसरा व्याह परम सुन्दरी आनन्दी बाई से कर, उसीके वशी भूत हो गए। स्त्री के कहने में आके उन्होंने राज्य का आधोआध बटवारा करना चाहा, इसीसे एक नई कलह उठ खड़ी हुई। बालाजी के पुत्र ने युवक होने पर भी चाचा के शरणागत हो घरेऊ धधकती हुई अग्नि को बुझा दिया। विवेकभ्रष्ट रघुनाथ अपने भतीजे को कैद कर आप ही मालिक बन बैठे।

पानीपत में मरहठों की हार सुन हैदराबाद के निज़ाम अपनी अमलदारी फैलाने में उठ पड़े। रघुनाथराव ने उनसे लड़ के हार खाई। पर पेशवा का हाथी युद्धक्षेत्र से भागना नहीं जानता था, इसीसे राघोबा के हजार उद्योग करने पर भी उसने पीठ न दिखाई। बस, इसीसे दादा साहब को शत्रुओं के हाथ में कैदी होना पड़ा, इसीसे युवक माधवराव रणक्षेत्र में चाचा के साथ कैदी बने। वह चाचा की यह अवस्था देख ऐसे दुखी हुए कि अपने रखवालों के साथ युद्धक्षेत्र में उतर पड़े। बुढ़े मल्हारराव होलकर ने उस समय निज़ाम पर चढ़ाई न कर पूना के सिंहासन पर अधिकार करने को माधवराव को सलाह दी, पर माधवराव ने कहा, "चाचा को शत्रुओं के हाथ पटक किस मुंह से मैं पूना लौटुंगा?" युवा के इन महत्वपूर्ण उत्तर वाक्यों को सुन बुढ़े मल्हारराव लज्जित हुए। माधवराव ने अपनी बहादुरी से थोड़े ही दिनों में निजाम को पराजित कर चाचा को छुड़ा लिया। इससे अपने भतीजे पर दादा साहब

का स्नेह बढ़ गया। उन्होंने अपनी राजी से माधवराव को सिंहासन दे दिया।

माधवराव तेजस्वी, क्रोधी और धर्मपरायण थे। वह किसीको अन्याय करते देख उसे क्षमा नहीं कर सकते थे। कहते हैं कि एक बेर उनके मामा ने किसी अनाथा युवती पर पापदृष्टि की। यह सुन उन्होंने उन्हें बेंत पिटवाया था। उनकी माता ने चाहा था कि अपने भाई को क्षमा करवा दे, पर उन्होंने सच्चे राजधर्म को न छोड़ा। बेगार पकड़ने को वह अन्याय मानते थे। एक बेर उनके सेनापति ने किसीको बेगारी पकड़ा था; इसलिये वे उसपर बड़े क्रोधित हुए। यहां तक उनकी इच्छा रहा करती थी कि किसी तरह उनकी किसी बात से किसी को कष्ट न हो। यह बात प्रसिद्ध है कि उन्होंने रामशास्त्री को, जो विलक्षण न्यायपरायण थे, अपने यहां का विचारकार्य्य सौंपा हुआ था। मल्हारराव होलकर की मृत्यु के उपरान्त उनकी पुत्रबधू प्रातःस्मरणीया अहिल्या बाई* को, अन्याय से उससे राज्य छीनने की लालसा से, लालची दादा साहब ने माधवराव को बहुत लुभाया था, पर माधवराव को यह स्वीकृत न होने के कारण उनका वह अन्याय उद्योग न होने पाया।

उसी समय में हैदराबाद के निज़ाम के दीवान रुखमत उद्दौला ने अपना मकान बनवाने के लिये एक ब्राह्मण की धर्त्ती अन्याय से छीन ली थी। बिचारे ब्राह्मण ने निज़ाम के दरबार में बहुत पुकार मचाई, पर किसीके कानों में जूं भी न रेंगी। तब बिबस हो वह पेशवा के दरबार में पहुंचा। इस के बारे में पूना दरबार से कई बेर निज़ाम को चिट्ठी भेजी गई। पर निज़ाम ने उस लिखा पढ़ी पर कुछ भी ध्यान न दिया। तब नवाब की आँखें खोलने को माधवराव ने अपनी फ़ौज तैयार की। जब मरहठों की सेना राजधानी के पास पहुंची तब नवाब की आंखें खुलीं और उन्होंने माधवराव से सन्धि करनी चाही। इसपर माधवराव ने कहला भेजा "आप ब्राह्मण की धर्त्ती उसे लौटा दीजिए, यही हम चाहते हैं और इस चढ़ाई का जो कुछ खर्चा नवाब देंगे मैं वही लेलूंगा, पर निज़ाम साहब को कुरान छू के शपथ पूर्वक यह लिख देना पड़ेगा कि ब्राह्मण की वंशपरम्परा उस धर्त्ती पर अपना अधिकार रक्खे"। नवाब ने इसे स्वीकार कर लिया और मरहठे अपनी सेना ले पूना को लौट गए। (शेष आगे) ले० कार्त्तिकप्रसाद।

* मेरी लिखी अहिल्याबाई की जीवनी पढ़िए।

श्री गुरु अमरदास जी

प्यारे पाठको, बिगत संख्याओं में महात्मा श्री गुरु नानक जी और गुरु अंगद जी का चरित्र मैं आप लोगों की भेट कर चुका हूं। अतएव आज तीसरे गुरु अमरदास जी का जीवन-चरित्र लेकर आप लोगों की सेवा में उपस्थित होता हूं और आशा करता हूं कि मेरे इस थोड़े से परिश्रम से आप लोग अवश्य कुछ न कुछ लाभ उठावेंगे और शिक्षा प्राप्त करेंगे।

संवत १५३६ विक्रमी, वैशाख सुदी १४, बृहस्पति वार के दिन, पहर रात बाकी रहे, ग्राम बासर, परगना अमृतसर में, माता सुलच्छनी जी के गर्भ से अमरदास जी ने जन्मग्रहण किया था। इनके पिता का नाम ताजभान था। यह जाति के भल्ले खत्री थे।

इस बात को आप लोग अच्छी तरह जानते ही होंगे कि जो पुरुष भविष्यत में 'बड़े आदमी' होकर संसार भर को अपने गुणों से मोहित कर लेते हैं, उनकी भावी उन्नति का लक्षण बाल्यावस्था से ही कुछ न कुछ दीख पड़ने लगता है। तदनुसार हमारे चरित्रनायक भी बाल्यावस्था से ही साधु-संगत से अधिक प्रीति रखते थे। सदा सन्त महात्माओं के निकट बैठ कर ज्ञानकथा सुनना उन्हें अधिक भाता था। जब उनकी उमर कुछ बड़ी हुई, तो एक दिन वह गंगास्नान करने जा रहे थे, मार्ग में एक ब्रह्मचारी से उनसे भेट हुई।

बहुत सी बात चीत होते होते, कहीं उस ब्रह्मचारी की दृष्टि अमरदास जी के पैरों पर जा पड़ी। वह ब्रह्मचारी सामुद्रिक शास्त्र का अच्छा ज्ञाता था, अतएव अमरदास जी के पैरों पर पद्म का चिन्ह देख कर उसने कहा कि "बच्चा अमरदास, तैं अवश्य एक दिन राजगद्दी का स्वामी होगा"।

यद्यपि अमरदास जी को राजगद्दी नहीं, वरन् गुरु की गद्दी मिली थी, तथापि उस ब्रह्मचारी का वचन झूठ नहीं हुआ; क्योंकि उसी गद्दी के प्रताप से अकबर ऐसे शाहनशाह अमरदास जी का सम्मान करते और उनपर भक्ति रखते थे। संवत १५५६ में जब उनकी अवस्था प्रायः बीस वर्ष की थी, तब उनके पिता ने पुत्र के पांव में संसार की मायारूपी बेड़ी डालने की इच्छा से एक प्रतिष्ठित मनुष्य की रामकुंवर नामक कन्या से उनका विवाह कर दिया। इस विवाह के फल स्वरुप अमरदास जी को दो पुत्र और एक कन्या भी उत्पन्न हुई। परन्तु इस गृहस्थाश्रम में फँसे रह कर भी उनकी धुन नहीं टूटी थी, वरन् उस समय उनके चित्त में सच्चे धर्म की खोज की ओर भी अधिक लालसा पैदा हुई और अपना मतलब सिद्ध करने के लिये वह हर एक धर्म और सम्प्रदाय के पण्डित और साधू सन्यासियों से मिला करते थे, तथा धर्मविषय पर उन लोगों से बात चीत किया करते थे। परन्तु उनके इस दौड़ धूप का कुछ भी फल न निकला, उनके चित्त को शान्ति कहीं भी न हुई। अन्त को एक दिन गुरु अङ्गद जी की लड़की को उन्होंने नानक जी की वाणी गाते सुना। उन वाणियों ने उनपर बड़ा असर किया। उनके मन ने कह दिया कि इतने दिनों तक तू जिस वस्तु की खोज में था वह यही है। उन पदों के सुनते ही उन्हें उसके बनानेवाले की खोज पड़ी, तथा गुरु अङ्गद जी की पुत्री बीबी अमरु जी के, जो इन पदों को गा रही थीं, निकट जाकर अमरदास जी ने इसके बनानेवाले का नाम पूछा, तथा इसका पूरा इतिहास विदित होने पर, वह ऐसे मुग्ध हुए कि उन्हें गुरु की गद्दी के दर्शन की बड़ी लालसा हुई। अपने मन का हाल उन्होंने बीबी अमरु जी से कहा। वह इन को अपने पिता गुरु अङ्गद जी के पास लिवा ले गई। बस, फिर क्या था, अङ्गद जी से भेट होते ही उनकी शङ्का का पूरा पूरा समाधान हो गया और उनपर उन्हें ऐसी श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न हुई कि घरबार सब छोड़ कर वह गुरु अङ्गद जी ही की सेवा में रहने लगे। संवत १५९७ विक्रमी में शिष्य होने के उपरान्त लगातार बारह वर्ष तक उन्होंने ऐसी श्रद्धा और भक्ति से गुरु की सेवा की कि अङ्गद जी उनपर बड़े प्रसन्न हुए और उनसे पुत्रवत् स्नेह करने लगे। उनकी गुरुभक्ति का हम आपको एक उदाहरण सुनाते हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि संवत १५९७ में उन्होंने गुरु की सेवा करनी प्रारम्भ की और बारह वर्ष तक वह निरन्तर अङ्गद जी की सेवा में लगे रहे। उनका जन्म संवत १५३६ में हुआ था। इस हिसाब से जिस समय वह अङ्गद जी के शिष्य हुए, तब उनकी आयु ६१ वर्ष की थी और ७३ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने अङ्गद जी की सेवा की। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि वृद्धावस्था में वह अङ्गद जी के शिष्य हुए थे। आप लोग अच्छी तरह जानते होंगे कि यह अवस्था कैसी दुःखदाई होती है, और मनुष्य के सारे शारीरिक बल इत्यादि को कम कर देती है। परन्तु नहीं, हमारे चरित्रनायक ने उस अवस्था को प्राप्त होकर भी अपने कर्तव्य को नहीं छोड़ा। उनकी गुरुभक्ति ऐसी अटल थी कि उस अवस्था में भी गुरु के स्थान से तीन कोस की दूरी पर व्यास नदी से गुरु जी के स्नान के लिये जल लाने के निमित्त आधी रात को उठ कर वह नित्य जाया करते और सवेरा होते होते गुरु के स्थान पर लौट कर उसी जल से वह अङ्गद जी को स्नान कराया करते थे। उनका यह नियम कभी भी नहीं टूटा, यहां तक कि एक दिन शीत काल को ऋतु में हवा तेज बह रही थी,

ऊपर से पानी बरस रहा था, परन्तु ऐसे आपद् काल में आधीरात के उठ कर वह जल लाने गए। जब जल लेकर लौटे तो मार्ग में अधिक कीचड़ होने के कारण उनका पैर फिसल गया और वे धम्म से भूमि पर गिर पड़े; परन्तु गिरती वार भी उन्होंने जल की गगरी सम्हाल रक्खी और अन्त के गुरु के स्थान पर आकर प्रति दिन की भांति उन्हें स्नान करवाया। हम समझते हैं कि अब आप लोगों के यह समझाना बाकी न रह गया होगा कि अमरदास जी गुरु के कैसे आज्ञाकारी और भक्त थे। अन्त के अङ्गद जी ने उन्हें दृढ़ समझ कर, उन्हींको अपने बाद गुरु की गद्दी दी। संवत् १६०९ विक्रमी में अमरदास जी गुरु नानक जी की पवित्र गद्दी पर विराजमान हुए। गद्दी पाने के बाद अमरदास जी गोइन्दवाल में रहने लगे। उन्होंने आज कल के महन्तों की भांति गद्दी पर बैठ कर केवल अपनी ही पूजा नहीं करवाई थी, वरन् रात दिन वह नानक जी के सत्यसिद्धान्तों का प्रचार किया करते थे। आस पास के पहाड़ी राजाओं के सिक्ख धर्म का अनुयायी बना कर उन्होंने इस धर्म की बड़ी उन्नति की। इसके सिवाय वह ईश्वरोपासना में ऐसे दृढ़ थे कि अत्यन्त वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी दीवार की एक खूंटी के सहारे खड़े खड़े परमात्मा का ध्यान और भजन किया करते थे, एक घड़ी भर के लिये भी शय्या पर नहीं लेटते थे। गरीबों और दुःखियों के सदाव्रत और लंगर तो सदा बांटा ही करते थे।

संवत् १६०० में गुरु की गद्दी पाने के पूर्व अमरदास गुरु की आज्ञा लेकर एक बार कुरुक्षेत्र में गए थे। वहां अनेक सम्प्रदाय और भिन्न भिन्न मत के लोगों का समागम हुआ था। कई पण्डित और साधू इनसे मिलने आए और इनके अमृतरूपी उपदेश को सुनकर ऐसे मुग्ध होगए कि जो उनके पास आया उसने फिर उनका साथ छोड़ना न चाहा। इसी प्रकार इनके साथ एक भारी मण्डली होगई और जब वे कुरुक्षेत्र से ग्राम अमली को जाने लगे, तो वह मण्डली भी उनके साथ चली। मार्ग में ठीकेदार ने आदमी पीछे १) महसूल मांगा, परन्तु अमरदास जी ने महसूल देना अस्वीकार किया और वहीं डेरा डाल दिया। अन्त को यह झगड़ा यहां तक बढ़ा कि ठीकेदार ने राजा टोडरमल से जा शिकायत की। टोडरमल ने यह सब हाल तथा गुरु अमरदास जी की महिमा अकबर को सुनाई। अकबर ने उसी समय यह आज्ञा देदी कि "सिक्खों से महसूल न लिया जावे"। बस, फिर क्या देर थी, इस हुकुमनामे के आते ही अमरदास जी के साथ की मण्डली भर के मनुष्यों ने सिक्ख धर्म ग्रहण कर लिया और सबके सब बिना महसूल दिए आगे बढ़े।

राजा टोडरमल की ज़बानी इनकी महिमा सुनकर अकबर के गुरु अमरदास जी के दर्शनों की बड़ी लालसा हुई, तथा संवत १६२२ में वह स्वयं इनके दर्शन को आया और बहुत सा धन रत्न उसने अमरदास जी के भेट दिया, तथा उनके सुललित धर्मोपदेशों के सुन मोहित सा होगया। उसने अमरदास जी को एक बड़ी जागीर देनी चाही, परन्तु उन्होंने लेना अस्वीकार किया और धन रत्नादिक जो भेंट में आए थे, गरीब दुःखियों और कङ्गालों को बांट दिए। शाहनशाह अकबर इनका बड़ा भक्त था और गुरु की भांति उनका सम्मान किया करता था। परन्तु अमरदास जी को अपने इस सम्मान और सुख्याति का ज़रा भी गर्व न था। वह बड़े सादे भाव से अपना दिन बिताते थे। सबको भोजन कराने के उपरान्त वह थोड़ा सा दूध और चावल या दलिया खाते थे और भोजन के बाद कुछ देर तक गोपाल पण्डित से शास्त्र और स्मृति की कथा सुना करते थे। अकबर बादशाह के बाइस सूबों की भांति इन्होंने भी बाइस गद्दियां कायम की थीं।

अकबर बादशाह इनका ऐसा भक्त था कि एक समय अमरदास जी की आज्ञा से उसने उनके स्थान पर पक्की बावली बनवा दी थी।

इतिहासों में ऐसा लिखा है कि अमरदास जो एक समय कई आदमियों से कई प्रकार के प्रश्नोत्तर किया करते थे। सौ वर्ष के करीब आयुष होने पर भी वह ऊपर लिखे प्रकार से खड़े खड़े ईश्वर की उपासना किया करते थे, तथा गुरु नानक जी के सत्यसिद्धान्तों के प्रचार करने में भी इन्होंने यथासाध्य उद्योग किया था। इसी प्रकार से अपने कर्त्तव्य को पालन करते, तथा अत्यन्त वृद्धावस्था में भी ईश्वर के ध्यान और उपासना में आलस्य न कर दृढ़ता से स्थिर रहते हुए, इक्कीस वर्ष तक गुरु की गद्दी पर रह कर, संवत १६३१, भादों सुदी १४ (९५ वर्ष की अवस्था में) को दो घड़ी रात रहे गुरु अमरदास जी की पवित्र आत्मा इस जीर्ण देह को छोड़कर स्वर्गधाम को सिधारी।

वेणीप्रसाद।

बालक-विनोद

भारत की परमेश्वर से प्रार्थना

१

हे दीनपालक! दयामय! दुःखहारी!
हे हे महा-महिम! मङ्गल-मूल-कारी!
हे प्रेम-मूर्ति! परमेश्वर-नाम-धारी!
थोड़ा विनीत विनती सुनिए हमारी॥

२

आलस्य, मोह, मद, मत्सर में हमारे
जो ये मनुष्य सब डूब गए बिचारे।
सो तो गए; न उनका अब आसरा है;
हे नाथ! हाल उनका अति ही बुरा है॥

३

जो ये, परन्तु, सब बालक हैं दिखाते;
माता, पिता, गुरू जिन्हें श्रम से सिखाते।
सन्मार्ग में तुम सदा उनको चलावो;
ए हो दयामय! दया इतनी दिखावो॥

४

हो सत्य बात इनको सब काल प्यारी;
हे दीनबन्धु! अभिलाष यही हमारी।
बोलें न झूठ; उससे अति दूर भागें;
राखें सु-सङ्ग; खल सङ्गति में न लागें॥

५

आलस्य, फूट, मदिरा, मद दोष सारे
छाये यहां सब कहीं टरते न टारे।
हे भक्त-वत्सल! इन्हें उनसे बचावो;
हस्तारविन्द इनके सिर पै लगावो॥

६

जो ये कुरीति-समुदाय नए, पुराने,
नाना प्रकार, बहुधा, सब में समाने।
हे सत्य-सिन्धु! उनसे इनको उबारो;
है हानि, हाय, कितनी! तुमही बिचारो॥

७

उद्योग और श्रम, शिल्प कला सिखावो;
व्यापार में मन सदा इनका लगावो।
विद्या, विवेक, धन, धान्य, सभी बढ़ावो;
आरोग्य और बलवान इन्हें बनावो॥

८

देखो, यहां सकल बालक ये खड़े हैं;
छोटे अनेक, दस पाँच कहीं बड़े हैं।
हे हे दयालु; इनका कर थाँभ लीजै;
कीजै कृपा, अब इन्हें मत छोड़ दीजै॥

९

है एक और विनती तुमसे हमारी;
सो भी करो सफल हे प्रभु पापहारी!
ये सातवें नृप नए यडवर्ड देव
रानी-समेत चिरजीव रहें सदैव॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

नसीरुद्दीन हैदर

दूसरा अध्याय

हम सब पीछे के कमरे में बैठे बादशाह की राह तक रहे थे कि एक बजे से कुछ पहिले वह अपने लाड़ले मुसाहिब (हजामदास) के कन्धे से ढासना लगाए आते दीख पड़े। इस जुगल जोड़ी में बादशाह लम्बान में कुछ निकलते थे और उनका मित्र दबता था, परन्तु हजाम का बदन खूब गठीला और हृष्ट पुष्ट था और देखने में भी वह बड़ा निरोगी जान पड़ता था। हजाम यद्यपि मध्यम उचान का था, किन्तु लम्बान की कसर उसने चौड़ान में निकाल ली थी। जहांपनाह उस दिन की नाईं सादा काले रंग का सूट पहने थे, अन्तर केवल इतना ही था कि फ़ाक कोट (frock coat) के बदले आज ड्रेस कोट (dress coat) पहिने हुए थे। गले में काली नेकटाई लगाए और पैरों में काले बूट थे। बस, यही उनका वस्त्र था और यही उनके आभूषण थे। उनके चेहरे से भलमनसाहत के साथ साथ बादशाही प्रताप और बिभव का भली भांति लक्ष हो रहा था। इसके विपरीत हजामदास की आकृति पर स्वाभाविक नीचता की मुहर लग रही थी और फिटकार बरस रही थी। इसका वस्त्र यद्यपि बादशाह के सदृश था, पर फिर भी जो अन्तर दीख पड़ता था वह इस बात का यथेष्ट परिचय देरहा था कि मनुष्य के आन्तरिक भाव कभी छिपाए नहीं छिपते। नीच प्रकृति को हजार उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण से ढकिए, पर उसका प्रकाश हो ही जाता है। खाने के कमरे में मेज़ पर जब हम लोग बैठे तो बिचित्र समां देख पड़ा। पूर्वी चमक दमक के साथ पश्चिमी सादगी एक प्रकार की विचित्र शोभा दिखा रही थी। बादशाह एक सुनहरी कुर्सी पर बैठे थे जो भूमि से कुछ ऊंचे रक्खी थी। मेज के एक छोर पर बादशाह थे और हम सब दाहिने बांये इधर उधर बैठे हुए थे। मेज़ का दूसरा किनारा इसलिये खाली रक्खा गया था कि जिसमें नौकरों को रिकाबियां रखने उठाने में सुगमता हो। परन्तु असल गरज़ यह थी कि जिसमें बादशाह सलामत नाच रंग, खेल तमाशे, बिना रुकावट देख सकें। हम लोग बैठे ही थे कि कमरे में एक ओर का पर्दा उठा और उसमें से आधी दर्जन सुन्दर, अल्पवयस्का टहलनियां उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण पहिने अठिलाती हुईं आती दीख पड़ीं। मुझे पहिले ही से चेतावनी दे दीगई थी कि इन टहलनियों पर आंखें गड़ा के वा टकटकी बांध के देर तक देखते रहना दरबार के नियम के प्रतिकूल है, क्योंकि उनकी गिनती भी हरम शाही में होती है और वे जनसाधारण की दृष्टि से पोशीदा रक्खी जाती हैं। परन्तु यह ख्याल ही ख्याल है। जब तक मैं मेज़ पर बैठा था, लोगों की नजर बचाकर खूब आंखें सेकता रहा और अपने हाव भाव से इस प्रकार बेपरवाही दिखाता था कि जिसमें लोग समझें कि मुझे इन सब बातों से शौक नहीं है। यह सब परम रूपवती और तरुण स्त्रियां थीं। इनका रंग श्यामवर्ण था। काले काले बालों की गुथी हुई चोटियां, जिनमें मोती टंके थे, कमर तक लटक रही थीं। इनके चेहरे के खुलते रंग पर ये काली चोटियां अपनी विचित्र छबि दिखा रहीं थीं। इनके गाल मारे जोश के तमतमा रहे थे। एक हलका बारीक दुपट्टा, जिस पर कारचोपी के काम बने हुए थे, सर से पैर तक लटक रहा था। इन बारीक दुपट्टों में से इनके मोढों का रंग छना पड़ता था। बादशाह को मुरछल करती बेर जब ये आगे बढ़तीं और फिर एक विचित्र अदा से पीछे हटती थीं, उस समय इनके विस्तृत सीनों का उभाड़ बड़ा भला दीख पड़ता था। इनके अंग का तरला भाग बड़े बड़े तुर्की पायजामों से ढंका हुआ था। ये पायजामे लाल या नीले साटन के बने हुए थे। कमर के पास चुस्त और फिर क्रमानुगत ऐसे ढीले होते गए थे कि घुटनों के पास समेटकर कमर में खोस लिए जाते थे और इनके ऊपर सोने की पेटी बांध ली जाती थी।

ये सब चुपचाप आके बादशाह की कुर्सी के पिछाड़ी खड़ी होगईं। न तो बादशाह ने इनसे कुछ कहा और न दरबारियों में से किसीने इनकी ओर देखा। खाने के समय का यह नियम माने नित्यप्रति का था। इनकी बाहें कोनी तक नंगी थीं। जब ये पारीपारी से दो दो मिल के मधुरगति से मुरछल करती थीं और कभी बादशाह की कुर्सी के पास आजातीं और कभी फिर पीछे हट जातीं थीं, उस समय का इनका भाव और छवि वास्तव में देखने योग्य होती थी। यदि भारतवर्ष की ललनाएं अपने शारीरिक सौन्दर्य्य में अपने दूसरे देश की बहिनों से बढ़ गई हैं तो वह केवल अपने काट छांट और सुडौलपने के कारण। कामदेव की स्त्री रति (Venus) की प्रतिमा बनाती बेर चित्रकार ने अवश्य इन्हीं बाँहों के ढांचे का आशय लिया होगा। इस प्रकार ये टहलनियां धीरे धीरे मुरछल डुलाया करतीं, अथवा बादशाह का हुक्का ताज़ा किया करतीं। बीच बीच में पारी पारी से विश्राम लेने को भी चली जातीं, यहां तक कि बादशाह के उठने का समय आन पहुंचता और वह उठके हरम में चलते नज़र आते। परन्तु वह शराब में प्रायः ऐसे मत्त हो जाते कि येही सब अपने सहारे से उन्हें अन्दर महल में पहुंचा आया करती थीं।

इन बातों के अतिरिक्त भोजन का ढंग बिलकुल युरोपियन था और कलकते के किसी योरोपियन धनिक के यहां के भोज से बहुत कुछ मिलता जुलता था। हिन्दुस्तानी नौकर बड़ी सावधानी और शान्त भाव से आते जाते और अपने अपने काम करते थे। हम सब बादशाह से वार्तालाप किया करते। साधारणतः शुरवा, मछली, रान, दाल चावल, चपातियां और फल दस्तरखान पर चुना जाता। इन सबका पकानेवाला अपने फन का बड़ा निपुण था। शाही पाकशाला का प्रधान बावरची एक फरासीसी था। यह महाशय पहिले कुछ दिनों तक बङ्गाल क्लब (कलकत्ता) के प्रधान बावर्ची रह चुके थे। परन्तु इस फरासीसी बावर्ची अथवा अङ्गरेज़ कोचवान, किसीकी भी अपने पद से बाहर पैर रखने की सामर्थ्य न थी। यदि हर एक बातों में किसीकी चलती थी तो वह हजामदास थे, जो केवल बादशाह के मुसाहिब ही नहीं बने फिरते थे, वरञ्च राज्य भर में उनकी तूती बोलती थी।

नसीरउद्दीन यद्यपि मुसलमान था, परन्तु शराब से उसे कुछ भी अरुचि न थी। अवध के प्रायः सभी अमीरों की यही दशा थी। मैंने हजरत को कई बेर कहते सुना है कि कुरान में शराब का निषेध नहीं है। हां उसके अति की अवश्य मनाही है। परन्तु मेरी समझ में उनका मत यह था, और वह इसीके अनुसार व्यवहार भी करते थे, कि जब जनसाधारण को संयम से पीना रवा है तो बादशाह को अति भी रवा हो सकती है। और इसीसे बिरले ही कभी ऐसा हुआ होगा कि हजरत मेज पर से अचेत न उठे हों। हम लोगों के सामने मेज पर प्रायः क्लारेट, मडियरा और शैम्पेन (ये सब अङ्गरेज़ी शराबों के नाम हैं) रक्खा जाता था और जब गर्मी अधिक पड़ती तो इनको पहिले से बर्फ से बुझा देते थे, जिससे ये और भी अधिक स्वादिष्ट हो जाते।

भोजन इसी तरह जारी रहता और इसके साथ साथ शराब का दौर भी चलने लगता। कुछ काल में बादशाह और उनके मुसाहिब अधिक उन्मत्त हो जाते और तब जहांपनाह बड़े ललक से फरमाते "हम हमेशा से युरोपियन लोगों को प्यार करते आए हैं, और इसीसे यहांवाले मुझसे बुरा मानते हैं। यदि हमारे वंशवालों का बस चले तो दिन दुहाड़े हमें विष दे दें। परन्तु इन बिचारों की कुछ चलती नहीं! वे मुझसे बड़े भयभीत रहते हैं। वल्लाह! मेरा भय इनके दिलों में कैसा समाया हुआ है!"

इसपर उनके सिर चढ़े मुसाहब कहते "हज़ूर से वास्तव में ये सब बड़ा डरते हैं।"



रविवर्म्माकृत सीता जी की परीक्षा।

हे राम! दृष्टि यह मोरि तुम्हैं विहाई। जो और ओर नहिँ स्वप्नहुँ में सिधाई॥
तो हे मही! तुम फटौ; न विलम्ब लावौ। दै स्थान मोहिँ उर में, सबको दिखावौ॥—म० प्र० द्विवेदी।

बादशाह इसपर फरमाते "ताड़ना दे देकर मैंने उन्हें भलि भांति भयभीत कर रक्खा है।"

फिर बांये ओर फिर कर हम लोगें से फरमाते "क्यों जी! तुमने लखनऊवालें के तो आपस में बहुधा लड़ते झगड़ते देखा होगा?"

"जी हज़ूर! बहुधा।"

"क्या कभी एक दूसरे का बध भी कर डालते हैं?"

"जी हज़ूर! कभी कभी।"

"हां, हम भी जानते हैं। पर क्यों जी! तुम लोगें के साथ तो कभी छेड़ छाड़ नहीं करते?"

इसपर हम सब जबाब देते "नहीं हज़ूर, कभी नहीं।"

तब वह कहते "ये दुष्ट जानते हैं कि मैं अंगरेजें को बहुत प्यार करता हूं, एवं इनसे छेड़छाड़ करेंगे तो बादशाह हम सबका जड़ मूल से नाश कर देंगे।"

तत्पश्चात् नाना प्रकार के उमदा फल जो उष्णप्रधान देशों में पैदा होते, मेज पर ला के रक्खे जाते थे और इसकी समाप्ति के साथ मानो भोजन की भी समाप्ति होती और खेल तमाशों का आरम्भ होता। ये खेल तमाशे भांति भांति के होते थे। कभी नजरबन्द वालें का खेल शुरू होता और ये अपने करतब दिखा कर सबके कैातूहल से विस्मित कर देते। अपने बदन को इस प्रकार तोड़ते और मंड़ोड़ते या रस्सी से ऐसे कस के बांधते और ऐसे ऐसे आश्चर्य्यजनक खेल करते कि मानो बदन में हड्डी का कहीं लेस ही नहीं है। उछल कूद में बन्दरें के प्रपितामह बन जाते। हाथों से माथे के बल बड़ी फुर्ती से चलते। इन खेलें में ऐसी फुर्ती दिखाते थे कि देखनेवाला चकित हो जाता था। दर्शकें में से यदि किसीनें एक कहकहा लगा दिया तो बस मानें इन्हें मुह मांगा वर मिल जाता और वे बड़े प्रसन्न होते। कभी दरबार के मसख़रे (भांड़) आपस में बहस मुबाहसा करते और अपनी अपनी युक्ति लड़ाते, परन्तु इनके वार्तालाप में प्रायः निर्लज्ज शब्दों का अधिक प्रयोग होता था। कभी इन्द्रजाली और सपेहरे भयङ्कर सांप को अपने बश में कर के लोगें को प्रसन्न करते। कभी मेज पर हज़ूर के सामने मुर्गे, बटेर, वा तीतर की लड़ाई होती। कभी कठपुतलियें का खेल होता और मनुष्य की नाईं ये ताल सुरपर नाचतीं और मटकतीं। इन खेलें के साथ साथ कमरे में किसी ओर अपने साज़ समाज के साथ रण्डियां भी नाचती जाती थीं। जिस रोज मैं पहिले पहल भोज में शरीक हुआ हूं, उस दिन कठपुतलियें का खेल हो रहा था और रण्डियां नाच रहीं थीं। बादशाह सलामत कठपुतलियें के नाच को जी लगा के देख रहे थे और हँसते जाते थे। हजामदास जब देखते कि यह खेल बादशाह को खूब भाया तो तुक में तुक मिलाने के लिये आप भी हँस पड़ते या प्रशंसा करने लग जाते। नाचते समय रण्डियां विचित्र हाव भाव बतातीं। कभी एक हाथ माथे पर और दूसरा हाथ कमर पर धर के फिरकी के समान कमर हिलाती हुई बादशाह के निकट आ जातीं और फिर अठलाती हुई समाजियें के पास जा पहुंचतीं। इन रण्डियें का मुखड़ा वैसा सुन्दर न था जैसा कि बादशाह की टहलनियें का था। परन्तु इनके बदन को काट छांट खूब सुडैाल थी और सबसे बढ़के इनकी सजधज थी। ये अपने हर एक अङ्ग को इस प्रकार बनातीं और सवारतीं थीं और फिर अपने अङ्ग अङ्ग से ऐसी फुर्ती और लोच प्रगट करतीं थीं कि विचारा मनुष्य लट्टू ही हो जाता था। इनके समाजी अपने तबले और सारङ्गी पर अपना जैाहर दिखाते और उसके साथ साथ कभी आगे कभी पीछे हटते। पर ये हर हालत में अपने साज को रण्डियें के सुर से मिलाए रहते थे जिससे मालूम होता था कि साज मुख्य है और रण्डी उसका साथ दे रहीं हैं। इन रण्डियें के नाच वा उनके भाव बताने में बादशाह वा उनके मुसाहिबें

में से किसीको अधिक दिलचस्पी न थी, परन्तु मैं बड़े गैार से देखने ग्रैार सुनने में मग्न था। बादशाह ग्रैार उनकी वजह से सारा दर्बार कठपुतलियों के तमाशे देखने में लैालीन था ग्रैार सब उसकी वाहवाही में लगे थे। इसी समय बादशाह ने हजामदास के कान में झुक के न जाने क्या कहा ग्रैार वह तत्क्षण बाहर जाता दीख पड़ा ग्रैार फिर शीघ्र ही लैाटा ग्रैार बादशाह के हाथ में चुपके से न जाने क्या दिया। बादशाह ने अपनी कुर्सी पीछे खिसकाई ग्रैार उठके मेज़ की दूसरी ग्रोर घूम के जा रहे ग्रैार पास पहुंच कर गैार से तमाशा देखने लगे। तमाशेवालों ने समझा कि ग्रब भाग्य उदय हुग्रा, ग्रब मुंह मांगा इनाम लेंगे। यह विचार कर जी लगा के तमाशा करने लगे। बादशाह भी थोड़ो देर तक तो चुप चाप गैार से देखते रहे ग्रैार बाद को ग्रपना हाथ फुर्ती से ग्रागे बढ़ाया ग्रैार फिर खींच लिया। हाथ का पीछे हटाना था कि एक कठपुतली धम से जमीन पर ग्रागिरी। इससे स्पष्ट मालूम हो गया कि बादशाह के हाथ में कैंची थी जिससे उन्होंने तार काट दी होगी। इस बात से तमाशे करनेवाले भी ग्रवश्य खिन्न होंगे, पर वे इसे देख कर ऐसे ग्रचम्भे में ग्रा गए ग्रथवा ऐसे बन गए कि मानों कोई बड़ी भारी दैवी घटना हो गई हो। हिन्दुस्तानी लोग बनावट में स्वाभाविक ऐसे निपुण होते हैं कि उन्हें इस विषय में शिक्षा देने की कोई ग्रावश्यकता नहीं है। बादशाह ग्रब हम लोगों की ग्रोर मुखातिब हुए ग्रैार इस दृष्टि से देखने लगे माने हम लोगों से यह कहलाया चाहते हैं कि "वाह! वास्तव में कैसी सफाई की है"। इस पर हजामदास ने कहकहा लगाया ग्रैार फिर दूसरे मुसाहिबों ने भी उसका साथ दिया। परन्तु बादशाह के हाथ की सफाई का ग्रभी ग्रन्त नहीं हुग्रा। वह बेर बेर हाथ बढ़ाते ग्रैार हटा लेते ग्रैार हरएक बेर में एक पुतली बेजान होके भूमि पर धम से ग्रा गिरती। हरएक पुतली के गिरने पर बादशाह सलामत हंस पड़ते ग्रैार दरबारी उनका साथ देते ग्रैार बिचारा तमाशे का मनेजर रहरह के ग्रचम्भे में ग्राता। जब एक एक करके सब पुतलियां गिर गईं तब भी बादशाह के मसखरेपन का ग्रन्त न हुग्रा ग्रैार हजरत ने बत्ती लेकर तमाशे के घर में ग्राग लगा दी। बारे, बड़ी कठिनाई से ग्राग बुझाई गई। इसके बाद उस रात को ग्राखिर तक नाचनेवालों पर रायज़नी होती रही। शराब के दैार खूब जारी रहे ग्रैार बादशाह सलामत शराब में ऐसे चूर हुए कि जो वास्तव में सभ्यता के प्रतिकूल था।

यह न ख्याल करना चाहिए कि इस बीच में हमने उधर बिलकुल ही ग्रपनी नज़र न डाली थी जिधर कोने में एक गाच का पर्दा लटक रहा था। मुझे पहले से खबर थी कि हरम की लाड़ली बेगमों को ग्राज्ञा है कि उस पर्दे की ग्रोट से खाने का तमाशा देखें। इसलिये उस ग्रोर टकटकी बांध के देखना नियम के विरुद्ध है। परन्तु मैं लोगों की ग्रांख बचा के कभी कभी उधर का नज़ारा ले लेता था। यह पर्दा इतना मोटा था कि उस पार की सूरत हम स्पष्ट नहीं देख सकते थे। केवल पर्दे के भीतर कुछ धुँधली परछांई सी सूरतें चलती फिरती दीख पड़ती थीं। इनमें एक सूरत कुछ स्पष्टता के साथ गद्दी पर बैठी दीख पड़ती थी। वह निस्सन्देह उस समय की बादशाह की प्रियतम होगी। रोशनी की ग्राभा से उनके हाथ ग्रैार गले के ग्राभूषण चमकने लगते थे। जिस समय बादशाह ने कठपुतलियों को काट गिराया था, उस समय पर्दे के भीतर से स्त्रियों की मधुर ग्रैार प्यारी हँसी सुन पड़ी थी। यद्यपि दूर होने से हम लोग पर्दे के भीतर की कोई वस्तु स्पष्ट रूप से नहीं देख सकते थे, परन्तु पर्देवालियां हम सबको ग्रवश्य देखती होंगी। (इसका कारण फासला नहीं है जैसा साहब बहादुर लिखते हैं। पर्दे के भीतर ग्रँधेरा होने से बाहरवाले जो चांदने में बैठे थे, भीतर ग्रँधेरे की चीज़ नहीं देख सकते थे)।

शराब ने अब अपना पूरा असर सब पर जमा लिया। नाच रङ्ग होता ही रहा, पर बादशाह सलामत उन्मत्त होते चले गए, यहां तक कि थोड़ी देर में उनके बचे बचाए होश हवास भी जाते रहे और अन्त में उन टहलिनियों और दो मज़बूत ख्वाजाओं ने सहारा देकर उन्हें पर्दे के भीतर पहुंचा दिया और वह महलसरा में पहुंच गए। यह बात कैसी आश्चर्यजनक देख पड़ती थी कि शराब के नशे में उन्मत्त होकर एक बादशाह भी साधारण पुरुष सा दीख पड़ता था। दूसरे दिन महल के उस भाग के देखने का मुझे अवसर मिला जिसे अबतक मैं न देख सका था। इसके भीतर का हरएक भाग वैसा ही सजा हुआ था जैसे महल के दूसरे भाग थे। शीशे और चमकीली चीज़ों की हर जगह बहुतायत थी। ऐसी चीज़ें बहुत थीं जिनमें चमक दमक बहुत हो, परन्तु उनमें वास्तविक सुन्दरता न थी। इसका एक भाग मुझे बहुत भाया जहां एक बनावटी झील थी, जिसने एक प्रकार से सारे बाग को घेर लिया था। इसके बीचो बीच में एक बारहदरी बनी हुई थी और वह टापू की नाईं जल के बीचोबीच में स्थिर थी। इसतक पहुंचने का कोई मार्ग न था। बाहर से बारहदरी उमदः उमदः रङ्गों से रङ्गी हुई थी और उसके ऊपर छोटे छोटे बुर्ज बने हुए थे। इस झील का जल उज्वल और निर्मल था। इसमें रङ्ग बिरङ्ग की सुनहली रुपहली मछलियां इधर उधर तैर रही थीं। इनमें बहुधा एक या डेढ़ फुट की लम्बी मछलियां थीं। छोटी डोंगी पर चढ़ के इस बारहदरी तक जाना होता था और इसीलिये एक डोंगी सदा किनारे पर बँधी रहती थी। मेरे मित्र (जो बादशाह के मुसाहिब थे और मेरी अपेक्षा इन्हें बादशाह बहुत मानते थे) डोंगी में जाबैठे और मुझे भी बुलाया। हम लोगों के बैठते ही नौकाचालक आन पहुंचा और डोंगी को खेकर उसने हमें उस बारहदरी तक पहुंचा दिया। मुझे तो लखनऊ भर में यही एक घर सुन्दर देख पड़ा। इसमें दो कमरे मझोले नाप के बने हुए थे और खूब ही सजे थे। इस बारहदरी में दीवार के पास चारों ओर कोचें बिछी हुई थीं। बड़े कमरे के बीच में एक मेज़ थी जिसपर शाही महल का एक छोटा सा ढांचा रखा हुआ था। इस ढांचे में शिल्पकार ने महल के एक एक कोने कुतरे का बजिन्स नमूना बना के सामने खड़ा कर दिया था और रंग भरने में ऐसी बुद्धि खर्च की थी कि उसे देखते ही भारतवर्ष की शिल्पकारी की अन्तःकरण से प्रशंसा और मुक्तकंठ हो बड़ाई करने लगा। (हा! अब वह शिल्पविद्या और शिल्पकार कहां चले गए!) जिस बारहदरी में हम लोग खड़े थे, वह भी उस ढांचे में दिखाई गई थी जो परिमाण में बादाम से बड़ी न होगी। परन्तु शिल्पकार ने बड़ी सूक्ष्मता से बुर्जों की कलश, बाहर के रङ्ग की भरावट और भीतर के दोनों कमरों की नकल उतारी थी।

इस बारहदरी में खड़े होकर इधर उधर देखने से जान पड़ता था मानो हम किसी परिस्तान में खड़े हैं। उज्वल जल में रङ्ग बिरङ्गी मछलियों का इधर उधर तीर के समान तैरना, किनारे से एक सजी हुई डोंगी का बंधा रहना, झील के किनारे किनारे रङ्ग बिरंगे फूलों की झमाठ और उनके ऊपर बड़ी बड़ी झाड़ियां, जिन्होंने सारी दुनियां को मानो हमसे छिपा रक्खा था—यह सब समां मुझे ऐसा भला दीख पड़ा कि मैं अपनेको भूल-गया और सोचने लगा कि यदि मैं बादशाह होता तो कुल राज पाट महलादि छोड़कर इसी बारहदरी को निवासस्थान बनाता। परन्तु बादशाह सलामत अब इसमें कभी कभी बिरले ही आजाते हैं और इसीसे उनके बेतवज्जुही के चिन्ह चारों ओर दीख पड़ने लगे थे। किसी ज़माने में वह इस बारहदरी पर ऐसे लट्टू थे कि बेगमों के जमघटे में बैठ के इसीकी सैर किया करते थे और ख्वाजा लोग डोंगी खेते थे। परन्तु कई वर्षों से इधर उन्होंने इसे चित्त से उतार दिया था, जिससे यह बारहदरी बेमरम्मत हो रही थी।

इस घटना से कुछ दिन बीते अकस्मात् भोजन के समय इन रंगीन मछलियों की बात छिड़ी और यह बहस पेश हुई कि रंगीन मछलियां क्या खाई भी जा सकती हैं, और यदि खाई जांय तो स्वाद में कैसी होंगी? इस पर बादशाह ने फर्माया कि "हां खाई जाती हैं" और आज्ञा दी कि कल थोड़ी सी पकवाई जावें। दूसरे दिन आज्ञानुसार ये मछलियां पक कर खाने की मेज पर रक्खी गईं। पर खानेमें कुछ स्वादिष्ट न थीं। और यदि स्वादिष्ट होतीं भी तो इनका खाना कठिन था, क्योंकि इनमें कांटे बहुत थे। इनसे तो हिलसा नामक मछली हज़ार दर्जे अच्छी होती हैं, जिसके विषय में हिन्दुस्तानी कहते हैं कि उसमें कांटा बहुत होता है।

अब शाही दर्बार का नित्य एक नया नियम सीखते सीखते मेरा जी ऊब गया था। एक दफ़े का योंही ज़िकर है कि बादशाह ने रेज़िडेण्ट को भोजन का नेवता दिया। जिसमें एडिकाङ्ग और छावनी के भी बहुत से अंगरेज़ आकर शरीक हुए। भोजन इत्यादि के अंत होने पर बादशाह एक सरजन की ओर मुखातिब हुए जो कम्पनी का मुलाजिम था और जिसे हम यहां जोन्स के नाम से पुकारेंगे।

बादशाह—"मिस्टर जोन्स! आइए, हम आप ड्राफ्ट की एक बाज़ी खेलें"। विदित हो कि जब यह जोन्स बादशाह के एडिकाङ्ग थे तो इन्हें बादशाह को ज़क देने की एक प्रकार से लत लग गई थी। इससे बादशाह इनसे भीतर से रुष्ट थे। जोन्स— "बड़ी खुशी से। हजूर के साथ खेलने में मेरी सरासर प्रतिष्ठा है"। बादशाह— "पर १०० मोहरों (१ मोहर=१६ रु०) की बाज़ी बदनी होगी"। जोन्स— "हजूर, मैं १०० मोहरों की बाज़ी तो नहीं बद सकता, मैं एक गरीब आदमी हूं"।

बस, बादशाह अब अपने मास्टर साहेब की ओर फिरे और कहने लगे "मास्टर जी! आप हमसे १०० मोहरों की बाज़ी बदते हैं"?

चूंकि मास्टर साहेब बादशाह के मिज़ाज़ से भली भांति परिचित थे, इस लिये उन्होंने उत्तर दिया कि "हज़ूर की यह कृपा है। मैं किस योग्य हूं, मैं तो इसमें अपना सरासर गौरव समझता हूं"।

बस, खेल की तखती मंगाई गई और गोटियां बिछ गईं और लगा खेल होने। मैं भी बादशाह के समीप बैठा हर एक चालों को देख रहा था। चूंकि मैं जानता था कि मास्टर साहब शतरंज के बहुत अच्छे खेलाड़ी हैं, इसलिये ड्राफ्ट भी अच्छा खेलेंगे, परन्तु मैंने देखा कि आज उनकी चालें बड़ी निकम्मी पड़ रही हैं। यद्यपि बादशाह बुरा खेल रहे थे, पर यह उनसे भी गए बीते हो रहे हैं। इससे मुझे दरबार के नियमों की यह शिक्षा मिली कि अपने भर सक बादशाह को मात नहीं करना चाहिए। मास्टर साहेब यद्यपि बड़ी बुरी चाल चल रहे थे, पर फिर भी प्रत्यक्ष में ऐसे बन गए थे मानों जितनी सोच समझ से वह खेल सकते हैं, खेल रहे हैं। पर मैं भांपता जाता था कि वह बड़ी कठिनाई से बादशाह को जीतने का अवकाश दे रहे हैं। इसके बादही सुनने में यह भी आया कि मुसाहिबों में से बाज़े प्रायः ऐसा भी करते हैं कि बादशाह के विपक्षी को बातों में उलझा लेते हैं, और इस प्रकार बादशाह सलामत को मौका देते हैं कि वह आंख बचा के कुछ मोहरे इधर के उधर कर दें। खैर किसी तरह से बाज़ी समाप्त हुई और मास्टर साहब ने (अपने आप) शिकस्त खाई और बादशाह सलामत ने प्रसन्न होकर मास्टर साहब से फर्माया कि "अब आप के यहां मेरी १०० मोहरें हुईं"। मास्टर—"जी हजूर हुईं तो सही, आज संध्या को मैं लेता आऊंगा"। इसके उत्तर में महल में जाते जाते बादशाह ने फर्माया, "देखिए मास्टर जी, हमारी मोहरें जरूर लेते आना"।

जब शाम के खाने के समय हम पंच पवित्रात्मा एकत्र हुए ते मास्टर साहेब के देखते ही सब से पहिला प्रश्न जो बादशाह का हुआ वह यह था कि "मास्टर जो, हमारी अशरफ़ियां लाए?"

मास्टर ने कहा "जी हजूर, लाया हूं। पर पालकी में रखो है। अभी जाकर लाया"। बादशाह ने कहा "अजी अहमक हुए हो? रहने दो अपनी अशरफ़ियां; चौघड़े कर के घर भेज दो। क्या मैं सचमुच तुम्हारी अशरफ़ियां लेने लगा हूं। जोन्स ने जाना था कि शायद मैं सच उसकी लेलूं। तुमने देखा था, सुअर खाने पर कैसा टूटा पड़ता था? वल्लाह! मुझे तो उसके नाम से घृणा है"।

परन्तु मेरे सुहृदय पाठकों के चित्त में यह प्रश्न उठेगा कि "क्या जोन्स को बादशाह की इस परिपाटी से विज्ञ करनेहारा कोई भी न था?" उन्हें मेरा उत्तर यह है कि जो कोई उसे सम्मति देता कि तू अबकी अवसर पर बादशाह से बाजी लगा बैठिओ, वह बिचारे जोन्स को १६००) रुपए अवश्यमेव डंड़वा देता। क्योंकि बादशाह का चित्त ऐसा अस्थिर था और वह ऐसे ओछे स्वभाव के मनुष्य थे कि उनकी बातों पर किसीको भी भरोसा नहीं था। उनके नौकर चाकर सभी जानते थे कि यदि बादशाह बाज़ी का रुपया ले लेंगे तो उसका दूना किसी दूसरे रुप में शीघ्र ही प्राप्त भी हो जायगा, अर्थात् बादशाह या वज़ीर इनाम के बहाने दे देंगे; परन्तु जिससे बादशाह का चित्त फिरा हुआ रहता है, उसके साथ न जाने कैसी हो। सच तो यह है कि बादशाह के साथ ड्राफ्ट या शतरंज खेलना एक टेढ़ी खीर थी, क्योंकि सब जानते थे कि वह खराब खेलते हैं, पर फिर भी अपने जीतने की कोशिश न करके अपनी बुरी से बुरी चालों द्वारा उन्हें जिताना पड़ता था। यदि इसके बिरुद्ध कोजिए तो आपने दरबार के नियमों का उल्लंघन किया। वह मेरे साथ प्रायः खेला करते थे, परन्तु मैं सदा उस अनुभव को स्मरण रखता था जो बादशाह और मास्टर के बीच खेल को देखने से मुझे प्राप्त हुआ था। उसके साथ अंटा खेलना सबसे कठिन था। उस अवस्था में यह जरुरी आन पड़ता था कि किसी ऐसे मित्र (जो बेईमानी में निपुण हो) को पास खड़ा कर ले जो आंख बचा के उसके गेंद को छूता जाय जिसमें बादशाह का गेंद आगे निकल जाया करे, वा इसी प्रकार उन्हें जिताने का दूसरा यत्न करता रहे। यह सब करतब बड़ी सफ़ाई से करने पड़ते थे, जिसमें किसीकी नजर न पड़ जाय। फिर बादशाह उसी अवस्था में राजो रहते थे जब उनका बिपक्षी इन बातों से अपने को ऐसा अचेत बनाए रहे और बादशाह की चालों पर उसे एक प्रकार का अचंभा जान पड़े। यदि ये सब बातें सफ़ाई से की गईं तो बादशाह सलामत प्रसन्न और राजी दीख पड़ते थे और बात बात पर हँसते जाते थे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि ये सब बातें बादशाह के लिये बड़ी निन्दा की हैं। पर सभी देश और प्रायः उन बादशाहियों में भी जो लखनऊ से सभ्यता में कहीं श्रेष्ठ हैं ऐसी बातें नित्य ही हुआ करती हैं। यह कदापि न बिचारना चाहिए कि ऐसी बातें केवल लखनऊ दरबार में ही होती थीं। जैसे रशिया एक सभ्य देश है, पर वहां के महाराजाधिराज को भी अण्टे, ड्राफ्ट या शतरंजादि खेलों में हरा देना दरबार के नियम के प्रतिकूल है। यद्यपि वहां के महाराजाधिराज बच्चे वा नासमझ नहीं हैं, फिर भी कोई न कोई ऐसी युक्ति जरूर लगा दी जाती है कि बाजी वही मार ले जाते हैं। परन्तु यह तो मन की गढ़त थी।

अब हम युरोप से एक बादशाह के आखेट का सच्चा हाल लिखते हैं जिसके पढ़ने से आप पर प्रगट हो जायगा कि हिज़ स्वार्दी मैजिस्टी (His Swarthy Majesty) नसीरउद्दीन शाह के दर्बार में ऐसी बेवकूफ़ियां नहीं होती थीं। सेण्ट ह्यूबर्ट के दिन (St. Hubert day) ता० ३ नवम्बर को, दर्बार बर्लिन (Berlin) की ओर से

ग्रवाल्ड (Grunwald) की जंगल में सूअर का आखेट होता है। यह मानों उनके वंश में परम्परा से एक प्रथा चली आती है। इस शिकार में शाह प्रशिया काले मखमल का कोट और सफ़ेद दूध का धोया पतलून धारण करके मैदान में आते हैं और दर्बारी लोग लाल कोट और चमड़े का बूट इत्यादि पहने रहते हैं। एक तैयार किया हुआ बनैला सुअर (जिसके दांत कटे रहते हैं) मैदान में छोड़ा जाता है और इसके पीछे बादशाह, उनके दरबारीगण और शिकारी कुत्ते दौड़ते हैं। एक हलकी दौड़ान में बादशाह अपने गिरोह सहित उस तक पहुंच जाते हैं और कुत्ते उसे धर दबाते हैं। परन्तु शीघ्र ही एक शिकारी घोड़े से कूदता है और कुत्तों को मार कर उनसे शिकार छीनता है, और फिर उठाके बादशाह के सामने लाता है। उस समय बादशाह सलामत घोड़े से उतरते हैं और सूअर के समीप आते हैं। अब उनके हाथ में एक जगमगाती तलवार थमा दी जाती है और वह उससे उसकी गर्दन पर एक वार करते हैं। बस, इसीके लिये बादशाह की बीरता और चतुरता की चारों ओर से वाहवाही होने लगती है। हजरत सचमुच अपनी शूरता पर फूले नहीं समाते और प्रसन्न होकर महल में प्रवेश करते हैं। इस उपकथा से मानो सिद्ध हो गया कि लखनऊ के दरबार की जैसी हालत है, वैसी योरोप के भी बहुतेरे दर्बारों की परिपाटी हो रही है।

लखनऊ दर्बार में युरोपियन मुलाज़िमों का जो आदर और मान होता था, उसे हिन्दुस्तानी दर्बारी कभी पसन्द नहीं करते थे। वरन् ये अंगरेज़ उनकी आंखों में कांटे के समान चुभते थे, परन्तु यह स्वाभाविक है। जिस समय हजामदास बादशाह के समीप रहते, उस समय वजीर सेनापति और जेनरल (अर्थात् राजा बख्तावर सिंह, जिनका स्थानान्तर में वर्णन होगा) इत्यादि एक की भी पेश न जाती थी और उसके आगे किसी की भी न चलती थी।

एक बेर यों ही बातों बात में नवाब बादशाह से कह बैठे "कि इन युरोपियन मुलाजिमों को आपके हज़ूर में जूते और बूट पहिन के हाज़िर होना उचित और योग्य नहीं है। हम लोग ये बात न खुद करें और न दूसरों की पसन्द करें। हज़ूर की यह रेआयत एक प्रकार हद से टप गई है। आप इसको निश्चय जानिए कि हज़ूर के पिता गाजीउद्दीन हैदर के कभी यह सह्य न होता"।

बादशाह अपने नम्र और आज्ञाकारी वजीर से ये निर्भय शब्द सुन पहिले तो चुप हो रहे, पर रोशनउद्दोला ने यह बात कुछ ऐसे तपाक से कही थी कि बादशाह को उत्तर देना ही पड़ा।

बादशाह—"क्या मैं इङ्गलिस्तान के बादशाह से भी श्रेष्ठ हूं"?

"हिन्दुस्तान में तो हज़ूर सब बादशाहों में श्रेष्ठ हैं। बादशाह देहली से भी हज़र बढ़ गए हैं। खुदा हज़ूर को हज़ार वर्ष की आयु दे" उस कपटी वज़ीर का यह उत्तर था।

बादशाह—"रोशनउद्दौला! मेरा प्रश्न यह है कि क्या मेरा पद इङ्गलिस्तान से भी बढ़ गया है"।

वजीर—"हजूर के सेवक की तो यह सामर्थ्य नहीं कि किसी बादशाह को रुतबे में हज़ूर से बढ़ा देवे"।

बादशाह—"सुनो वज़ीर! और जेनरल तुम भी सुनो! इङ्गलिस्तान का बादशाह हमारा मालिक है और ये लोग अपने जूते पहिने उसके हज़ूर में जा सकते हैं। तो फिर मेरे सामने जूते पहिनके आने में क्या दोष है? देखो! ये लोग मेरे हज़ूर में टोपी देके कभी नहीं आते। क्यों? इसका उत्तर दो"।

वज़ीर—"हज़ूर! दुरुस्त है। टोपी पहिने तो कभी नहीं आते"।

बादशाह—"बस, तो इसीसे समझ लो कि वे अपने बादशाह की इज्ज़त इसी तरह किया करते हैं। उनके यहां की चाल यही है कि वे

अपनी टोंपी उतार लेते हैं ग्रैार तुम अपना जूता उतार देते हो। परन्तु यदि चाहो तो तुम्हारे उनके बीच परिवर्तन हो जाय। मैं अभी उन लोगों को आज्ञा दे दूं कि आज से तुम लोग अपने जूते उतार के बाहर छोड़ आया करो, जैसा हिन्दुस्तानी दर्बारी करते हैं। परन्तु साथ ही तुम लोगों को भी अपनी पगड़ियां उतार के बाहर छोड़ आनी पड़ेगीं। क्यों है मंज़ूर ?"

इसके बाद फिर नवाब ने कभी इस विषय में बात न छेड़ी। कारण यह कि मुसलमानों में पगड़ी का उतरना मानों इज्ज़त का उतरना है। जब कभी किसी काम को पूर्ण करने का वा किसी काम को पुनः न करने को वे दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं तो ये शपथ खाते हैं कि "यदि हम ऐसा न करें तो हमारे बाप की पगड़ी उतर जाय"। इस बात चोत से हमलोग बड़े प्रसन्न हुए। ग्रैार बादशाह ने अपने मंत्री को आज्ञा दी कि इस बात को दिनचर्य्या में टांक लो, क्योंकि इस तरह की जो गुरुतर बातें होती थीं वे लिख ली जाती थीं, जिससे यह प्रगट हो कि जब बादशाह अपने होश में रहते हैं ग्रैार जब अपनी बुद्धि ग्रैार युक्ति से काम लेते हैं तो मूर्खता नहीं करते। हां जब नशे की तरंग या मूर्खता की सनक सर पर सवार होती है तो अवश्य कुछ लड़कपन कर बैठते थे।

मैंने बादशाह के चरित्र की भिन्न भिन्न स्थितियां पाठकों के सम्मुख पेश कर दी हैं ग्रैार आशा है कि अभी उनके गुण ग्रैागुण का वर्णन स्थान स्थान पर ग्रैार करूं। इस अध्याय को समाप्त करने के पूर्व बादशाह के दो प्रिय खेलों का कुछ ज़िकर कर देना ज़रूरी समझता हूं। इनमें से एक तो लीप फ्राग (Leap Frog) ग्रैार दूसरा स्नो बालिङ्ग (Snow Balling) था। (ये दोनो खेल विदेशी हैं, भारतवर्ष में अङ्गरेज़ों के आगमन के साथ इनका प्रचार हुआ है)।

एक बेर योंही हमलोग चैानगंज के रमनेवाले महल में, जहां प्रायः जानवरों की लड़ाई हुआ करती थी, बादशाह के साथ ठहरे हुए थे। इस रमने के चारों ग्रोर दीवार थी। इसका विस्तार तीन या चार एकर होगा। जब हमलोग बादशाह के साथ उस बाग में रहते तो वहां कोई हिन्दुस्तानी मुलाज़िम आने नहीं पाता। इस लीपफ्राग खेल के बारे में बादशाह ने किसीसे कुछ ज़िक्र सुन लिया था, कहीं इसका चित्र देख लिया था ग्रैार तभीसे उनको इसकी धुन सवार होगई थी। इस बेर अवकाश पाकर हिन्दुस्तानियों को बाहर निकलवा दिया ग्रैार बाग के फाटक बन्द करवा दिए ग्रैार खेल आरम्भ हुआ। बाडी गार्ड के कप्तान ग्रैार मास्टर साहेब की एक जोड़ी लगी ग्रैार दूसरी जोड़ी लाइब्रेरियन ग्रैार चित्रकार की थी। स्कूल के छात्रों की नाईं पहिले तो यह हलकी कूदान कूदते थे, पर कुछ देर बाद गहरी ग्रैार ऊंची कुदान कूदने लगे। मास्टर जी, हजामदास, कप्तान, लाइब्रेरियन ग्रैार चित्रकार इत्यादि स्कूल के छात्रों के नाईं खेल में लुण्ड मुण्ड होते रहे ग्रैार हम सब पसीने पसीने होगए। बादशाह सलामत पहिले तो खड़े तमाशा देखा किए, पर उन्हें भी लालच ने धर दबाया ग्रैार वे भी खेल में शरीक होने पर तत्पर हुए। बादशाह दुबले पतले थे ग्रैार कुछ ऐसे बलिष्ट भी न थे। संयोग से मैं कहीं उनके पास खड़ा था, इसलिये मेरी ग्रोर दैाड़े ग्रैार लगा खेल होने। ड्राफ्ट ग्रैार शतरंजादि की नाईं इस खेल में भी उनकी प्रसन्नता का ध्यान मुझे रखना पड़ा। एक बेर उन्हें पीठ पर लिए हुए मैं दैाड़ा ग्रैार उनके सहित भूमि पर लुण्ड मुण्ड हो गया ग्रैार मैंने फूल की कियारियों में उन्हें लुढ़का दिया। बादशाह सलामत कुछ झुंझला से पड़े ग्रैार उठके फर्माने लगे "बापरे बाप! तुम तो आदमी नहीं हाथी के समान एक लोथ हो"। यह सुनते ही मेरी तो होश जाती रही ग्रैार मैं समझा कि यदि यह रुष्ट हो गए तो अब लेने के देने पड़े। पर नहीं, वह रुष्ट नहीं हुए थे। हजामदास ने उनके लिये पीठ की ग्रैार वह हँसते

हुए एक तड़पान में उसके ऊपर जा रहे। और ये दोनों बहुत देर तक मिलके खेला किए, यहां तक कि बादशाह सलामत थक गए। उनके लिये बर्फ का पानी और क्लारेट मंगाया गया और उसे पीकर बादशाह तरो ताज़ा हुए।

अब पाठकवृन्द आप लोग स्नो बालिङ्ग (Snow-balling) के विषय में कुछ सुनने के लिये उत्सुक हो रहे होंगे। इसलिये इसे छोड़ अब उसका वर्णन करता हूं। यह क्रुसमस का समय था और हम लोग चैानगंज के बाग़ में बैठे बड़े दिन के विषय में बात चीत कर रहे थे। क्रुसमस से होते होते बात इंगलिस्तान की शरद ऋतु पर आगई और शरद ऋतु से बर्फ पर चर्चा छिड़गई और अन्त में बातों का सिलसिला स्नो-बालिङ्ग तक पहुंच गया। स्नो बालिङ्ग का हम लोगों ने बादशाह से खूब सविस्तर वर्णन किया। पर जिसने इस खेल को कभी आंखों नहीं देखा उसके लिये केवल मौखिक वृत्तान्त क्या कर सकता है। चैानगंज के इस बाग़ में मेरीगोल्ड (गेंदा) नामक पीला पुष्प बहुत था। कलकत्ते में क्रुसमस के दिनों में लोग अपने अपने घर इससे सजाते हैं। बादशाह ने जब हम लोगों से स्नो बालिङ्ग की खूब चर्चा सुनली तो चट इसके पांच छः पुष्प तोड़कर लाइब्रेरियन महाशय पर जो सबसे दूर खड़े थे फेंके। उनकी देखादेखी सब के सब मुसाहिबों ने वैसा ही करना शुरू किया और कोई दाहिने और कोई बांए लगा फूल उछालने। इन पीले पुष्पों को स्नो बाल (बर्फ के गेंद) मान कर हम सब खुशी खुशी खेलने लगे। बादशाह बड़ी तेज़ी से फूल का गेंद उछाल रहे थे, जो इनपर एक फेंकता था, उसपर ये तीन निशानें लगाते थे और बराबर हंसते जाते थे। निदान खेल बन्द हुआ, पर इन पीले पुष्पों की पखंड़िया हम सबके वस्त्र और बालों में ऐसी चिमट गई थीं कि हम सब पीले पीले हो रहे थे। हम सब उसी दशा में घर चल दिए। बादशाह सलामत के दिल बहलाने के लिये यह एक नवीन खेल था और इसको वे प्रायः खेलते ही रहे। ले० केशवप्रसाद सिंह।

नव्वाब सर सालारजंग बहादुर, जी.सी.एस्.आई.

भारतवर्ष में समय समय पर कई राजकार्य-धुरन्धर भाग्यशाली पुरुषरत्न हो गए हैं जिन्होंने अपने उत्तम कार्यों से अपने नाम इतिहास के पृष्ठों में अजरामर कर रखे हैं। गत शताब्दी में ऐसे ही एक पुरूष हो गए कि जिन्होंने हैदराबाद जैसे विस्तीर्ण और अव्यवस्थित राज्य का भार अपने सिर पर लेकर, बालकपन में किसी प्रकार की राजकीय की शिक्षा न पाने पर भी, अनेक आपत्तियां झेलीं, राजप्रबन्ध में कई नई नई बातें जारी कीं, न्याय करने की चतुरता और दूरदर्शिता से भिन्न भिन्न जाति की प्रजा में शांतता रखी और नूतन सुधारों के जारी करने में अपने जीवन को कई बार धोखे में डाल लिया। आज उन्हीं महानुभाव का संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त देने का हमारा विचार है।

नव्वाब सर सालारजंग बहादुर का जन्म एक पुराने अरब कुल में हुआ था, जिसका निवास पहिले जेरूसलेम और डेमास्कस के मध्यदेश में था। इस कुल का सम्बन्ध तैंतीस पीढ़ियों तक शेख ओवेस करानी से सिद्ध होता है। यह शेख साहिब मदीना के निवासी और मुहम्मद के समकालीन तथा उनके मित्र और अनुयायी थे। अनुमान सौ वर्ष से अधिक हुए कि इनके पूर्वज, यह समझकर कि हिन्दुस्तान के दरबारों में उत्साही और ढाढ़सी पुरूषों को बड़ा लाभ होता है, हैदराबाद को चले आए थे। यहां आने पर शीघ्र ही उनको निज़ाम सरकार के दरबार में आश्रय मिला। इस कुल के कई पुरूषों ने दीवानी पद का उपभोग किया है। मीर आलम, जो निज़ाम सरकार के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि थे और जिन्होंने अंगरेज़ सरकार को टीपू सुलतान की लड़ाइयों में बहुत कुछ सहायता दी थी, इन्हीं सालार जंग के परदादा थे; और मीर आलम की मृत्यु के अन्तर जो

मुनीरुल मुल्क, सहकारी चन्दूलाल के साथ, राज्य का कार्य सम्हालते थे, वह इनके दादा थे। चन्दूलाल के पदत्याग करने पर सिराजुल मुल्क प्रधान नियत हुए और कई वर्षों तक इन्होंने राज का काम सम्हाला। यह सिराजुल मुल्क हमारे चरित्रनायक के चचा थे। इसी सम्बन्ध के प्रभाव से सालारजंग को हैदराबाद के दीवान का पद प्राप्त हुआ।

सालारजंग का जन्म ता० २ जनवरी, सन् १८२९ ई० को हुआ। बालकपन में इन्हें इतनी ही शिक्षा मिली थी कि जितनी उस समय रईसों और सरदारों के लड़कों के लिये बस समझी जाती थी; अर्थात्, इन्होंने अरबी, फ़ारसी और कुछ अंगरेज़ी सीख ली थी और कुछ हिसाब वगैरः जान लिया था। राजनीति और राजव्यवहार की कोई विशेष शिक्षा इन्होंने नहीं पाई थी। बाल्यदशा में ही इनके पिता और दादा का देहान्त हो गया था और तबसे इनके पालन पोषण का भार इनकी दादी पर आया। जब ये सात बरस के हुए तब इनका बिसमिल्लाह कराया गया। उस समय के निज़ाम नसरुद्दौला भी उस अवसर पर उपस्थित थे। छुटपन में इनका स्वास्थ्य अच्छा न रहने के कारण यह अधिक परिश्रम नहीं कर सकते थे; और फिर तो इनकी रुचि विद्याभ्यास को ओर से दिन दिन हटती ही चली, यहां तक कि ये कभी कभी मदरसे से भाग जाते या घर में छिप रहते थे। एक समय की बात है कि सालारजंग मदरसे को न जाकर घर ही में कहीं छिप रहे थे; तब उनकी दादी ने क्रोध से कहा कि "यदि पढ़ने लिखने में तुम्हारा मन नहीं लगता तो तुम्हारा मर जाना ही अच्छा होगा।" इस ताड़ना का यह परिणाम हुआ कि सालारजंग पढ़ने लिखने में कुछ अधिक ध्यान देने लगे। आज कल जगह जगह जैसी पाठशालाएं बनी हैं, वैसी उस समय नहीं थीं। अतएव जो कुछ इन्होंने सीखा वह इतना अधिक न था कि जिसका विशेष वर्णन किया जाय। उनकी दादी जागीर के आय व्यय का हिसाब प्रथम अपने कारिन्दों से स्वयं समझकर सालारजंग को समझा देने को कहती थीं। बस, १९ वर्ष की अवस्था तक राजकाज के सम्बन्ध में इन्हें इतना ही ज्ञान प्राप्त हुआ था; पर यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि इतनी अल्प शिक्षा से ही इन्होंने बड़े बड़े कार्य कैसे किए!

जब इन्होंने राजसेवा स्वीकार की तब इनकी अवस्था लगभग २० वर्ष की थी। इस काल के पहिले निज़ाम के राज्य के कुछ भागों की देखभाल करने के लिये अंगरेज़ नियत किए गए थे; परन्तु सन् १८४८ ई० में भारतीय गवर्नमेण्ट ने यह आज्ञा दी कि इस काम पर कोई अंगरेज़ न रखे जांय। इसके अनुसार सालारजंग तालुक़दारी पर नियत किए गए और उन्होंने इस काम को आठ महीने तक अच्छी तरह चलाया। इससे इनको मालगुज़ारी का अच्छा अनुभव मिल गया। इन्होंने अपने स्वभाव को शांतता, आचरण की शुद्धता और कामों की सचौटी से अपना नाम अल्पकाल ही में सर्वत्र प्रसिद्ध कर लिया। जब इनके चचा सिराजुल-मुल्क की मृत्यु हुई, तब सालारजंग को हैदराबाद के दीवान का पद मिला और राजा नरेन्द्रप्रसाद इनके सहायक नियत किए गए। इस समय इन दोनों की अवस्था क्रम से २४ और २७ वर्ष की थी।

इस प्रकार हैदराबाद के प्राइम मिनिस्टर के पद पर स्थित होते ही सालारजङ्ग का ध्यान राज्य-व्यवस्था में सुधार करने की ओर झुका। उन्होंने अनेक प्रकार के विषयों से पूर्ण एक प्रस्ताव निज़ाम सरकार के पास भेजा और यह प्रार्थना की कि राजव्यवस्था में आवश्यक सुधार करने का अधिकार दिया जाय। परन्तु निज़ाम सरकार ने उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। तब सर सालार जंग बहादुर ने यह अभिप्राय प्रगट किया कि यदि निज़ाम सरकार से अनुकूल आज्ञा न मिलैगी तो मैं इस पद का त्याग कर दूंगा। इस

कारण से और कर्नल डेविड्सन के भी ज़ोर देने से निज़ाम सर्कार ने सर सालारजङ्ग को राज काज में सुधार करने के लिये पूर्ण अधिकार दिए।

ज्योंही इस प्रकार पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए, त्योंही सालारजङ्ग ने मालगुज़ारी की व्यवस्था में सुधार करना आरम्भ किया। सबसे पहिले तो उन्होंने कई तालुक़ेदारों को बेदख़ल कर दिया। इससे अरब लोगों में कुछ अप्रसन्नता फैलने लगी; क्योंकि उन्हें वे तालुक़े रेहन में मिले थे और अब जब तक उनके पलटे उन्हें कुछ द्रव्य न दिया जाय तब तक वे खुशी से बेदखल कभी नहीं हो सकते थे। परन्तु सालारजङ्ग की सत्यप्रियता और शुद्ध व्यवहार का ऐसा कुछ प्रभाव लोगों पर हुआ था कि इन्हें कई लोगों ने द्रव्य की सहायता भी दी। तिसपर भी इस कार्य की सफलता होने में बड़ी कठिनाई हुई। यह बात तो प्रगट ही है कि जिस वस्तु से हमारी सब आवश्यकताएं पूर्ण होती हैं और जिससे हमारा निर्वाह होता है, उसको यदि कोई हमारे पास से अलग करना चाहे तो हम कदापि शान्त न रहेंगे। इसी सिद्धान्त के अनुसार अरब तालुक़ेदार अत्यन्त अप्रसन्न हो गए। दुर्भाग्य से इस अप्रसन्नता को बढ़ाने के लिये हैदराबाद में दुष्ट जनों की कुछ कमी भी न थी। स्टेट का प्रबन्ध ऐसा बिगड़ा हुआ था कि धूर्त मनुष्यों को स्वार्थसाधन के निमित्त और परस्पर लड़ाई झगड़े पैदा करने के लिये नित्य अवसर मिल जाया करता था। ऐसे ही धूर्तों के उद्योग से हमारे चरित्रनायक के सत्कार्य बुरी दृष्टि से देखे जाने लगे। परन्तु सालारजङ्ग के धीर और गम्भीर स्वभाव के सामने ये धूर्त कबतक टिक सकते थे! पहिले पहल कुछ विरोध हुआ; परन्तु क्रम क्रम से इनके उपयुक्त कार्यों में सफलता दिखाई देने लगी। फिर इनका चित्त अन्य त्रुटियों के दूर करने में लगा। जहां कर्मचारियों से कुछ अन्याय का बर्ताव दिखाई देता था, वहां ये अत्यन्त उग्रता से सत्य राजनीति का प्रचार करते और जहां राज की अव्यवस्था से प्रजा को दुःख होता था, वहां सुधार करने के लिये सदैव तैयार रहते थे।

सर सालारजङ्ग के पहिले जितने दीवान हो गए थे उन सभों का मन इन दो प्रश्नों से बड़ा व्यथित रहता था—प्रथम, वर्तमान सेना का घटाना; और द्वितीय, अरबों से रिआसत का अनुकूल सम्बन्ध रखकर निज़ाम सरकार को लाभ पहुंचाना। इन्हीं विषयों की ओर हमारे चरित्र-नायक का भी ध्यान आकर्षित हुआ। धैर्य का अवलम्बन कर उन्होंने धीरे धीरे अशिक्षित सेना की संख्या घटानी आरम्भ कर दी और अरबों को राजभक्त बनाने के लिये कई उपाय रचे। यहां इस बात का लिख देना अत्यन्त आवश्यक है कि अरबों ने हैदराबाद में अनीति से बहुत द्रव्य कमा लिया था और अपने दुष्ट व्यवहार से वे गरीबों को इतना दुःख दिया करते थे कि रिआसत को भी उनसे डरना पड़ता था। इनका भयंकर स्वरूप इतना बढ़ गया था कि इनके अपराधी ठहराए जाने पर भी इन्हें दण्ड नहीं होता था। परन्तु धन्य है सालारजङ्ग की नीतिनिपुणता को कि जिन्होंने अल्पकाल के परिश्रम से ही अरब सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया और फिर उन्हीं की सहायता से हैदराबाद के सब अरबों को निज़ाम सरकार के न्यायालयों के अधिकार के आधीन बना दिया। इससे राज्य में शांति हुई और प्रजा को सुख हुआ। कोई मनुष्य अपने धन के बल पर किसी प्रकार का अन्याय नहीं कर पाता था। सब लोगों का क्लेशनिवारण प्रतिष्ठित न्यायालयों में होने लगा और प्राचीन समय के सब अत्याचार नामशेष हो गए।

जब हैदराबाद में इस प्रकार के नए नए सुधार हो रहे थे, उस समय हिन्दुस्तान के अन्य अन्य भागों में अङ्गरेज़ी राज्य के विरुद्ध भयंकर कलहाग्नि प्रज्वलित हो रही थी कि जिससे सर सालारजङ्ग की उन्नति का मार्ग कुछ रुक गया। सचमुच सन् १८५७ ई० में जो बलवा हुआ, वह ऐसा समय था

कि जब अङ्गरेज़ सरकार के प्रत्येक हितचिन्तक की परीक्षा हो चुकी। बड़े आनन्द की बात है कि सालारजङ्ग ने किसी सन्दिग्ध नीति का अवलम्ब न कर स्पष्ट रूप से अङ्गरेज़ों का पक्ष स्वीकृत कर लिया और अन्त तक वे बाग़ी लेगों से बचे रहे। शहर में जहां कहीं कुछ गड़बड़ हुई, वहां सालारजङ्ग ने अपने विश्वासपात्र अरब सरदारों की सहायता से ऐसा उत्तम प्रबन्ध रक्खा कि इस मुसलमानी रियासत में बलवे की हवा फैलने न पाई। उन्होंने शहर के सब मुख्य मुख्य स्थानों पर बड़े बड़े इश्तिहार देकर यह प्रगट किया कि उनका इस बलवे से कुछ सम्बन्ध नहीं है, और शहर के दरवाज़ों पर पहरा रखवा दिया जिससे कोई बाग़ी भीतर आने न पावै और भीतर के लोग बाहर जाने न पावें। इसीके साथ साथ उन्होंने यह हुक्म जारी किया कि शहर में किसी एक स्थान पर २० आदमियों से ज्यादे इकट्ठे न हों। सारांश यह कि सर सालारजङ्ग बहादुर की मानसिक दृढ़ता और अरब सरदारों की सहायता से हैदराबाद बलवे से बचा रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि शहर के दुष्ट और असन्तुष्ट लोग सालारजङ्ग को अपना बैरी समझने लगे और उन्हें मार डालने का उद्योग करने लगे। ता० १५ मई, सन् १८५७ ई०, के दिन, जिस समय सर सालारजङ्ग रेसिडेण्ट साहेब के हाथ में हाथ मिलाकर दरबार में चले जाते थे, उस समय एक दुष्ट घुड़सवार ने निशाना जमा कर ऐसी बंदूक चलाई कि सालारजङ्ग का काम ख़तम ही हो गया था; परन्तु भाग्यवश गोली इन्हें न लगी। अपने घातकी कार्य में निष्फलता देख वह दुष्ट हाथ में तलवार लेकर सालारजङ्ग की ओर दौड़ा, परन्तु हानि पहुंचाने के पूर्व ही पकड़ा गया और मारा गया।

सालारजङ्ग की राजकार्यकुशलता से अङ्गरेज़ बड़े प्रसन्न हुए और सन् १८६० में गवर्नमेण्ट ने निज़ाम सरकार को ज़ब्त की हुई रियासतें वापस कर दीं और सालारजङ्ग को के.सी.एस्.आई. तथा जी.सी.एस्.आई. की पदवियां प्रदान कीं। निज़ाम सरकार भी अपने दीवान की अद्भुत बुद्धिमत्ता से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनपर अधिकाधिक विश्वास रखने लगी। इससे सालारजङ्ग को राज्य का सुप्रबन्ध और उन्नति करने का अच्छा मैाका मिल गया। सन् १८६३ में फ़सल अच्छी न होने के कारण अकाल की सम्भावना थी। परन्तु यद्यपि उस समय आजकल की नाईं फ़ेमीन कोड तैयार नहीं था, तथापि उन्होंने ऐसा उत्तम प्रबन्ध किया कि प्राणहानि होने न पाई। इस काम से फ़ुरसत पाते ही उनका ध्यान सैनिक सुधार को ओर लगा। सेनाविभाग में कई लोगों को सैनिक सेवा के पलटे बड़ी बड़ी जागीरें दे दी गई थीं। इससे निज़ाम सरकार का अधिकार कुछ दुर्बल हो गया था। सर सालारजङ्ग ने अपनी अप्रतिम राजनीति से अरब सरदारों को प्रसन्नचित्त करके ये सब जागीरें ज़ब्त कर लीं। इसके बाद उन्होंने मालगुज़ारी वसूल करने का एक नया तरीका निकाला, जिससे प्रजा के कई क्लेश दूर हो गए और रियासत की आमदनी भी खूब बढ़ गई। परन्तु इन सब कामों से स्वार्थी सरदारों में असंतोष फैलने लगा और कई असंतोषी लोगों ने निज़ाम के पास शिकायतें कीं। यह बात तो प्रगट ही है कि हमारे राज्यासनाधीश प्रायः अव्यवस्थित चित्त होते हैं। वे एक क्षण में तुष्ट हैं तो दूसरे क्षण में रुष्ट! इसीसे देशी रजवाड़ों में बुद्धिमान और हितचिंतक दीवान को अपने कार्य को सुफलता में अनेक आपत्तियां उठानी पड़ती हैं। ठीक यही दशा इस समय सर सालारजङ्ग की हुई। उन्होंने जो अच्छे अच्छे कार्य किए थे उन सभों को एक क्षण में भूल कर निज़ाम सरकार केवल दुष्टजनों के कहने ही से अप्रसन्न हो गए। अपनी यह दशा देख सालारजङ्ग ने सन् १८६७ ई० में इस्तोफ़ा दे दिया; पर वह न तो मंज़ूर हुआ और न नामंज़ूर।

इस घटना का यह परिणाम हुआ कि रिआसत में चारों तरफ़ गड़बड़ होने लगी। चोर और डाकू, जो कि अब तक दबे हुए थे, फिर हमला करने लगे; और अमीर, उमराव तथा बड़े बड़े सर्दार, जो सालारजङ्ग के न्याय के डर से चूं नहीं करते थे, अब दिन दोपहर को गरीब लोगों को सताने लगे। सच बात तो यह है कि यदि सालारजङ्ग अपने दीवान के पद से और कुछ दिनों तक अलग रहते तो राज का सब प्रबन्ध बिगड़ जाता और हैदराबाद में हलचल पच जाती। परन्तु जिस अङ्गरेज़सरकार ने उनको प्रथम सहायता दो थी उसीकी सहायता से उनका और निज़ाम का फिर भी मेल हो गया। उन्होंने अपना इस्तीफ़ा वापिस ले लिया और वे पूर्ववत् काम करने लगे। परन्तु इस समय एक ऐसी अपूर्व घटना हुई कि जिससे यह प्रतीत नहीं होता कि अब सालारजङ्ग के कोई दुश्मन नहीं थे। ता० २७ जनवरी सन् १८६८ ई० के दिन सर सालारजङ्ग "बोचा" में बैठकर ईद दरबार में जा रहे थे। ज्योंही "बोचा" महल के समीप आया, त्योंही किसी बदमाश ने उन पर दो गोलियां चलाईं। पहिली गोली तो एक नौकर को लगी और वह मरकर ज़मीन पर गिर पड़ा। दूसरी गोली सनसनाती हुई बोचे के ऊपर से सालारजङ्ग की पगड़ी को चाटती हुई और एक दूसरे नौकर को घायल करती हुई चली गई। यह दुष्ट घातक शीघ्र ही पकड़ा गया और उसे फांसी का हुक्म सुनाया गया। नव्वाब सर सालारजङ्ग का हृदय अत्यन्त कोमल था। उन्होंने अपनी स्वाभाविक दयार्द्रता के अनुसार निज़ाम से प्रार्थना की कि इस दुष्ट को फांसी के पलटे जेल की सज़ा दी जाय। परन्तु निज़ाम ने उनकी प्रार्थना पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

सन् १८६९ ई० के फ़रवरी में निज़ाम अफ़ज़ुद्दौला के मरने पर उनके पुत्र वर्तमान निज़ाम गद्दी पर बैठाए गए। उस समय उनको उमर अढ़ाई वर्ष की थी। इस लिये रिआसत के सब अमीरों और सरदारों की सलाह से रीजेन्सी कायम की गई और सर सालारजङ्ग उसके एक मुख्य मेम्बर बनाए गए। जब प्रिन्स आफ़ वेल्स (अब सम्राट सप्तम एडवर्ड) बम्बई में आए थे, तब सालारजङ्ग उनसे मिलने को गए और वहां बड़े आदर सत्कार से उनकी मुलाक़ात हुई। इसके बाद सन् १८६६ में वे इंग्लैण्ड को गए और वहां स्वर्गीया महारानी विक्टोरिया से लेकर सब छोटे बड़ों ने उनका बड़ा सम्मान किया। आक्सफ़ोर्ड की युनिवर्सिटी ने उन्हें डी. सी. एल. का बहुमान-सूचक पद अर्पण किया। इस प्रकार विलायत यात्रा करके वे हैदराबाद को लौट आए और फिर राज काज में उपयुक्त सुधार करने की चेष्टा करने लगे। परन्तु अब समय और परिस्थिति की पूर्ण प्रतिकूलता होने के कारण बहुत कुछ न कर सके। तौभी उन्होंने अपने शासनकाल में प्रजा के जान और माल की उत्तम प्रकार से रक्षा की; न्यायालय स्थापित किए; पुलीस, जेल और सेना का प्रबन्ध किया; स्कूल, कालेज और अस्पताल खोले; धर्मशाला, रेल, सड़क, नहर और इमारतें बनवाईं; व्यापार के कई प्रतिबंध हटा दिए; बड़े बड़े अफ़सरों की तनख़ाह कम कर दी और स्वयं अपनी तनख़ाह घटा ली; और इसी प्रकार के कई काम किए कि जिनका पूर्ण विवेचन इस संक्षिप्त चरित्र में नहीं किया जा सकता। सालारजङ्ग के उत्तम प्रवन्ध का सबसे बड़ा भारी फल तो यही हुआ कि रिआसत की आमदनी चौगुनी बढ़ गई। सब लोगों की यही इच्छा थी कि परमेश्वर सर सालारजङ्ग जैसे राज-कार्य धुरन्धर प्रभावशाली पुरुष को, नव युवक निज़ाम के राज्यासन पर आरूढ़ होने तक, जीवित रखै कि जिसमें हैदराबाद का राज्य भली भांति सुधर जाय और प्रजा के सब क्लेश दूर हो जांय। परन्तु जैसा कि किसी कवि ने कहा है "मनसा चिंतयेत् कार्यं दैवमन्यत्र चिंतयेत्," उसीके

अनुसार परमेश्वर को यह बात मान्य न थी कि हैदराबाद की प्रजा को सालारजङ्ग के सुशासन का और कुछ समय तक लाभ मिले। सन् १८८३ ई० के फ़रवरी को ८ वीं तारीख को हैज़े की बीमारी से एकाएक उनका देहान्त हो गया। हा! इस अभागे भारतवर्ष से एक प्रतिभाशाली पुरुष को कुटिल काल ने उठा लिया!!!

जिस समय सालारजंग की मृत्यु हुई उस समय उनकी अवस्था केवल ५३ वर्ष की थी। इनकी मृत्यु से केवल हैदराबाद के लोगों को नहीं किंतु सम्पूर्ण भारतवर्ष के लोगों को दुःख हुआ। इनके कई दुश्मनों ने भी दुःख प्रदर्शित किया कि हैदराबाद के राज्य में से एक अद्वितीय पुरुष जाता रहा! सरकार हिन्द ने भी दुःख प्रदर्शित करने के लिये ता० १० फ़रवरी सन १८८३ को सरकारी गज़ट की एक बिशेष संख्या प्रकाशित की। उसमें लिखा है कि "गवर्नर जनरल साहिब बहादुर को यह प्रगट करते बड़ा खेद होता है कि तारीख ८ के शाम को हैदराबाद के रीजेंट और मिनिस्टर नवाब सर सालारजंग बहादुर, जी. सी. यस. आइ, की हैजे से मृत्यु होगई। इस दुर्दैवी घटना से बृटिश गवर्नमेन्ट का एक बुद्धिमान और अनुभवी मित्र, निज़ाम सरकार का ईमानदार और चतुर सेवक और हिन्दुस्तानी समाज का एक सुप्रसिद्ध पुरुष खो गया" हैदराबाद में नेटिव और यूरोपियन लोगों की एक बड़ी भारी सभा हुई, जिसमें ३००००० रुपए उनके स्मारक के लिये एकत्रित हुए। इङ्गलैंड से श्रीमती महाराणी, राजपुत्र तथा अन्यान्य बड़े महनुभावों ने तार भेज कर अपना दुःख प्रकाशित किया। मृत्यु के समय सर सालारजंग दो बेटे और चार बेटियां छोड़ गए। उनमें से मीर लायक अलीखां २१ बर्ष की अवस्था में दीवान नियत किए गए, जो इतिहास में दूसरे नव्वाब सर सालरजंग के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सर सालारजंग का चेहरा बड़ा स्वच्छ और शोभायमान था। ऊंचाई साधारण ही थी, परन्तु शरीर की सुन्दरता और हृदय की दृढ़ता का तेज उनके मुख पर स्पष्ट रीति से झलकता था। उनका स्वभाव शान्त और मिलनसार था। पोशाक भी सादी थी। उन्हें जवाहिरात का शौक़ बहुत ही कम था, सिर्फ़ दरबार के समय बेशकीमती पोशाक और जवाहिरात पहिना करते थे। जब दरबार में जाते थे तो हज़ार से लेकर डेढ़ हज़ार तक सवार साथ में रहा करते थे, परन्तु और समय में सिर्फ़ २०–२५ ही सवार सङ्ग रहते थे। इनका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा था। ये छोटी बीमारी की तो कुछ परवाह ही न करते थे। राज काज में उनकी नियमितता बड़ी सराहनीय है। प्रत्येक दिन का कार्य और समय पहिले ही से नियत कर लिया जाता था—जैसे, सबेरे रेज़िडेंट के साथ पत्र व्यवहार करते, फिर दरबार आम में जाते, और वहां से सलामी लेकर लौट आते फिर खाना खाकर कुछ निज का काम करते थे। दोपहर को मुत्सद्दियों का पेश किया हुआ हिसाब जांचते और चार बजे शाम तक रियासत के राजकर्मचारियों से मिल कर राज्य का प्रवन्ध करते, और सन्ध्या समय व्यायाम करने के लिये घोड़े पर या पैदल बाहिर जाया करते थे। शाम की नमाज़ हो जाने पर रियासत के खज़ाने का हिसाब जांचते और अन्त में लोगों की दरख्वास्तें लिया करते थे। इस प्रकार आधी रात तक काम करके निद्रा के लिये जाया करते थे।

जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि सर सालारजङ्ग जैसे परिश्रमी पुरुष हमारे भारतवर्ष में अल्पायु ही होते हैं तो हमारा अन्तःकरण दुःख से भर जाता है। परमेश्वर से यह प्रार्थना करके कि इस प्रकार के देशहितचिन्तक और भी उत्पन्न हों, हम इस लेख को समाप्त करते हैं और आशा रखते हैं कि सहृदय पाठक इस संक्षिप्त चरित्रलेख से अवश्य लाभ उठावेंगे। माधवराव सप्रे।

मदन दहन

[गत अंक के आगे]

तासु मीत बसन्त, अरु रति, महा भय सों पागि।
करत मन सङ्कल्प बहु बिधि चले ता सँग लागि॥

प्रानहू ते काज साधन परम प्रिय अनुमानि।
गयो सो हिमवान पै जहँ तपत शिव तपखानि ॥
॥२१॥ (२३)

समाधिस्थ मुनीन के तप तेज के। रिपु घोर।
मार-मद तहँ धारि तनु भो प्रकट मधु बरजोर ॥
होत उत्तर ओर सूर प्रवृत्ति देखि अकाल।
तज्यो दच्छिन वायु मुखते मनहु श्वास बिहाल
॥२२॥ (२४ व २५)

भूषनन सों जटित, नखसिख भरी रूप ललाम,
मदन मद सों छकी, अनुपम चारुता की धाम। (२६)
बजत नूपुर मन्दगति-बस अँगुरिन यहि भाँति,
मनहु तन धरि सुरुचि, पगपरि, रूप बरनत जात;
॥२३॥

जटित जेहरि तड़ित सी युग गुलुफ पै छबि देत,
भानु अरु सितभानु के मनु करत मेल सहेत,
होन ताड़ित तैान सुन्दरि चरन सों बिसराय
पल्लवित ह्वै उठ्यो फूल असोक रीति बिहाय
॥२४॥ (२६)

मञ्जरि चारु रसालन की ऋतु-
राज मनो बर बान बनायो।
भैांरन सों किसलै करि भूषित
मानहु नाम मनोज लिखायो ॥
बानन, पत्र समान, तिन्हैं लखि
कोकिल कूक पुकारि सुनायो।
"होहु सचेत, अहो बिरही जन!
चाहहु जो निज प्रान बचायो" ॥२५॥ (२७)

फूलि उठी सरसैां दुहु कूल
सोई बर बालक भीर लखानी।
नागर बाहु सोई जल पै
बिरवान की डार बढ़ीं सुखदानी ॥
बाजन कूजनि पच्छिन की गति
मन्द तरङ्ग बहै मद सानी।
तालन के प्रतिबिम्बन मैं
दरसात बरातन की अगवानी ॥ २६ ॥

रूप मनोहर भयहु सुगन्धित पुहुप न पाई।
कर्निकार* बस लाज रह्यो निज सीस नवाई ॥

चतुराननहु भए चूक बिधि की यह भारी।
सब गुन भूषित करत न जग एकहु तनुधारो ॥
निज मानहानि लखि शोक भरि
धारन तेहि कटुता कियो।
ह्वै गयो हलाहल मूल लैां
तदपि रह्यो धधकत हियो ॥ २७ ॥ (२८)

बक्र बाल-बिधु सरिस पुहुप किंसुक बिनु फूले।
अरुन बरन दरसात नखच्छत-नव समतूले ॥
दियो जैान ऋतुराज आज बनभूमि कुचन में।
निरखि जासु लावन्य चराचर छोभित मन मैं ॥
सुभ सीतल मन्द सुगन्ध तिमि वायु बहै मन-
भावनी।
अरु कोकिल कीर कपोत गन कलरव करत सुहा-
वनी ॥२८॥ (२९)

नव बसन्त श्री छपद, नैन कज्जल सम, धारयो।
चित्र वरण पुनि तिलक बरानन माहिँ सँवारयो ॥
सैारभ किसलय अधर चारु करि पूरित भाते।
अरुन बरन किय तिन्हैं बाल रवि सम परभाते ॥
करि यहि बिधि नूतन साज सब मनमोहनि
अतिहि भई।
के। देव दनुज नर जासु तेहि देखि न मति गति
हरि गई? ॥ २९ ॥ (३०)

तरु पियाल मञ्जरी सु रज कर साय़ चख पारि,
हे सहजहि मद मत्त, अन्धवत देति तिन्हैं करि ॥
मारुत सम्मुख धाय तैान अति भरि चित्र चावन
मरमरात तरु पातन पै बिचरैं मन भावन ॥
भखि अम्ब बैार रव कोकिलन
अरुन कण्ठ ह्वै जो कह्यो।
सो काम बचन सम मान सब
मानवतिन कर अपहरयो ॥३०॥ (३१ व ३२)

किन्नरीन के अधर सीत-गत सुन्दर सोहैं।
ह्वै कपोल पुनि पीत बरन चञ्चल-चित मोहैं ॥
होत प्रबाहित स्वेद चित्र रचना महँ गातन।
कामानल के समन हेत निसरत मनु जल कन ॥
कै आगम ग्रीसम के समुझि दुसह दाह के तपनि
डरि।

* कनेर का वृक्ष (अमरकोष, माहेश्वर टीका देखिए)।

जलदान जीव तन को करै रुदन चतुरता प्रकट करि ॥ ३१ ॥ (३३)
शङ्कर-बन-बासी सुमुनि लखि ऋतुराज अकाल ।
मन बिकार कर दमन किय नीठि नीठि केहु चाल ॥ ३२ ॥ (३४)
जब सुमनचाप चढ़ाय, रति सह, मार बन रुचि सों भरयो ।
अति नेह रस सम्मिलित भावहि दम्पतिन चेष्ठित करयो ॥
वर कुसुम पात्रहि माहिँ षटपदु रति अलैाकिक सों भयो ।
निज प्रिया पीछे चलत मधु रस पान करि आनन्द छयो ॥३३॥ (३५)
तिमि असित करसायलहु हरिनिहि चाव सों खजुवायऊ ।
तेहि परस सों चख मूँदि अनुपम भाव तहँ दरसायऊ ।। (३६)
मुख हंसिनी के लै धरयो बहु भाँति सों मनुहारि कै ॥३४॥
कैाल-पराग-सुगंधित बारि दियो
करिनी कर* सों निज स्वामिहि ।
खाय कछू† तिमि पंकज नाल
दियो चकवा चकई सहगामिहि ॥
किन्नर पूरित स्वेद महा मद
मत्त प्रिया मुख चुम्बन कीन्हों ।
पूरन चन्द विलोकि अकाल,
कला कछु राहु मनो गसि लीन्हों ॥ ३५ ॥ (३७-३८)
फूलन के वर गुच्छ सलैानि ‡
ओंठ प्रबाल भरो रुचि सोहैं ।
कोमल शाख-भुजानि लता
लपटैं बिरवान महा मन मोहैं ॥
नाक नटीगन के सुनि गान
तबै शिव साधि समाधि रहे यों !
इन्द्रिन जीति धरयो प्रभु ध्यान,
डिगाय सकैं बिघनादि कहो क्यों ? ॥३६॥ (३९-४०)

* शुंडा; सूंड़। † कुछ अंश। ‡ कुचनि कुचों से (सलैाना=कुच)।

जदपि भंग नहिं भई शम्भु की अचल समाधी ।
पै खरभर जग डारि मदन लज्जा गति बाधी ॥
थावर जंगम जीव सबै मद अंध बनायो !
असमय समय बिचार असमसर सकल छुड़ायो ॥
ह्वै अथऊ बिथल नर नाग सुर नहिँ छाँड़त छिन तरुनि गन ।
तपसिहु जन सेलिन तजि बिकल लगे नवेलिन दिसि झुकन ॥ ३७ ॥
मुगुधा मध्या नारि कतहुँ नहिँ परहिँ लखाई ।
रतिप्रीता प्रौढ़ाहि मदन जग युवति बनाई ॥
तजि तजि गुन मरजाद लाज कुल बिभव बड़ाई ।
कुल पतनिहु मद-अंध फिरैं कुलटन की नाईं ॥
रतिनाथ कोपबश भुवन तिहु सिंधु सरिस सीमा तरयो ।
सो उबरि बच्यो ताहु समय ईश जासु रच्छा करयो ॥ ३८ ॥
त्रिभुवन मैं बिकराल भयो अनरथ यह जैसो ।
तैसोई हर गणन कुलाहल कियो अनैसो ॥
भूत प्रेत गन कूदि कूदि करि करि अठखेली ।
नाचत ह्वै उनमत्त बजावत मगन हथेली ॥
हर लता-भवन के द्वार तब कनक दंड कर मैं लिए ।
नन्दी तरजनि मुख धरि, सबन "सावधान!" इंगित किए ॥ ३९ ॥ (४१)*
कम्प विहीन भए तरु वृन्द मलिन्दन चंचलता बिसराई ।
बैान बिहंगन धारि लियो तिमि काल कुरंगन हाल भुलाई ॥
शासन सों हरबाहन के बन चित्र समान परै दरसाई ।
साँझहि कानन बीच सुथम्भित तालन के प्रतिबिम्ब कि नाईं ॥ ४० ॥ (४२)
हैं बरावत, शुक्र सम्मुख दीठि, यात्रन लोग;
त्यों बचाय पुरारि दीठि-प्रपात मार सयोग,

* इस छप्पय के केवल अंतिम दो चरणों में मूल के ४१ वें श्लोक का आशय है।

पारिजात सुशाख बहुतक रहीं मिलि जेहि ठाम।
ध्यान थल त्रिपुरारि का तहँ गयो संकित काम ॥ ४१ ॥ (४३)

काल-बस-झखकेतु देख्यो ध्यान-थित-सुरराय।
लसत बेदी-कल्पतरु पर सिंह चर्म दसाय ॥
झुके कोमल कन्ध, राजत बीर आसन मारि,
लसैं बिकसित कंज से जुग पानि गोद मंझारि ॥ ४२ ॥ (४४-४५)

जटा जूट उठाय बाँधे नाग गन सों तैान।
अच्छ*माला कान मैं आसक्त† सुखमा भैान ॥
धरे ग्रंथित चारु श्याम-कुरंग चर्म ललाम।
भयो जो अति नील, कंठ-प्रभानि सों, तेहि याम ॥ ४३ ॥ (४६)

उग्र चख पूतरि अचल, अति धरे स्वल्प प्रकास,
नैन पट तिमि भृकुटि थिर, अति सिथिल अच्छ‡ बिकास।
नमित मुख करि नासिका दिसि लखत प्रभु ईशान ॥
योग आपुहि धारि तन मनु तपत तेज निधान ॥ ४४ ॥ (४७)

प्राण के अवलम्ब श्वासन रोकि हर साबधान,
अचल, पावस-मेघ से, प्रभु लसत अगम अमान ॥
किधैां रहि-तरंग-सरवर सरिस शिव भगवान,
किधैां मारुत-हीन-थल पै अचल-दीप समान ॥
कढ़त बाहर तृतिय चख मग जैान तेज अपार,
सीस सों उतपन्न ह्वै, बन करत सुखमागार ॥
बाल-बिधु श्री जो मृणालहु तार सों सुकुमारि।
करत ता कहँ मन्द सो, दिसि बिदिसि जोति पसारि ॥ ४६ ॥ (४९)

इन्द्रियन अवरोधि, चित्त समाधि-बल बस लाय,
हृदय मैं तेहि थापि, देखत आत्मरूप अघाय ॥
इबिधि चित्तहु-दुराधर्ष महेश के लखि तीर,
* खसत शर धनु करहु सों जान्यो न मार अधीर ॥ ४७ ॥ (५०-५१)

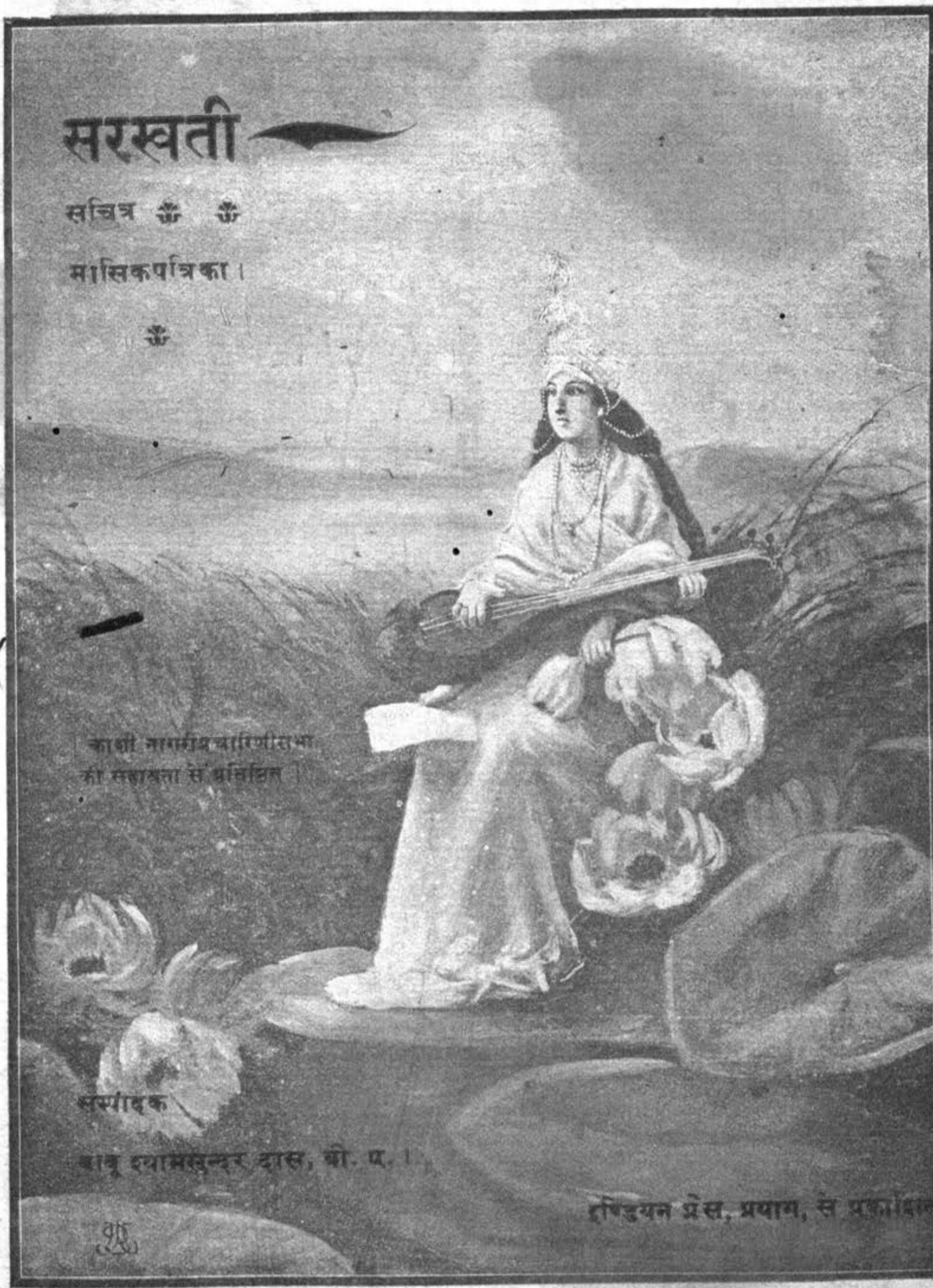
जीवदान तब देत, नष्टप्राय-बल-मार कहँ।
आई उमा सहेत, रूप शील गुण अवधि सी ॥ ४८ ॥

श्यामविहारी मिश्र, एम. ए., (शिरमैार)
और
शुकदेयविहारी मिश्र, बी. ए., (शशिभाल)

* रुद्राक्ष † लटकती हुई ‡ अक्ष ; नेत्र

* इस चरण में यतिभंग यों बचाया जा सकता है :—"खसत जान्यो करहु सों धनु शर न मार अधीर"

भाग ३] मार्च १९०२ ई० [संख्या ३



वार्षिक मूल्य अग्रिम ३)] [प्रति संख्या ।–)

सूची



मुन्शी गङ्गा प्रसाद वर्म्मा ।

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३] मार्च १९०२ ई० [संख्या ३

विविध वार्त्ता

देश के बड़े बड़े योग्य पुरुष भारत की प्रचलित शिक्षाप्रणाली से असन्तुष्ट देख पड़ते हैं। सब लोग अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार वर्त्तमान दोषों के दूर करने के उपाय सोच रहे हैं और इसी विचार की कसौटी पर परीक्षित सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने में लगे हुए हैं। इन्हीं देशहितैषी लोगों में से कुछ लोगों का यह सिद्धान्त है कि प्राचीन प्रणाली पर ब्रह्मचर्य के साथ यदि शिक्षा दी जाय तो आधुनिक प्रणाली में जो दोष हैं वे दूर हो जायंगे और भारतवर्ष के विद्यार्थी वास्तव में विद्या के सब गुणों से सम्पन्न हो अपने नाम को चरितार्थ कर सकेंगे। विदुरप्रजागर (३९ अध्याय) में लिखा है—

आलस्यं मदमोहौ च चापल्यं गोष्ठिरेव च
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च
एते वै सप्तदोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः
सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतो सुखम्
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥

अर्थात् आलस्य, मद, मोह, चापल्य, गोष्ठि, स्तब्धता, अभिमान और अत्यागित्व ये सात दोष विद्यार्थिओं के लिये अनिष्टकारी होते हैं, चाहे तो सुख ले ले, चाहे विद्या प्राप्त कर ले, दोनों का एक साथ होना असम्भव है। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। इन दोषों की निवृत्ति कैसे हो यही विचारने योग्य बात है। हमारे भारतवर्ष में प्राचीन प्रथा ऐसी थी कि बालक विद्याध्ययन करने के योग्य हुआ कि वह गुरु के यहां भेज दिया जाता था। वहां ब्रह्मचर्य से रह कर गुरु की आँखों के नीचे वह आचार व्यवहार को सीखता और विद्या अध्ययन करता था, इससे उसमें दोष उत्पन्न नहीं होते थे। यही विचार कर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के एक दल ने हरिद्वार में "गुरुकुल" नाम की एक पाठशाला खोलनी चाही है। इसमें विद्यार्थी २५ वर्ष की अवस्था तक रह सकैगा

ग्रोर ग्रावश्यकता पड़ने पर उसके माता पिता उससे मिल सकेंगे। इस उद्योग के नायक लाला मुन्शीराम जी हैं। वे ता० २२ ग्रोर २३ मार्च के एक बड़ी भारी सभा करके हरिद्वार के निकट गुरुकुल-पाठशाला को खोलनेवाले हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह उनके उद्देश्यों को सफल करे।

***

ग्रार्यसमाज की ग्रोर यदि हरिद्वार में गुरुकुल खुल रहा है तो मथुरा में भारतधर्म्ममहामण्डल का एक विशेष ग्रधिवेशन २८, २९ ग्रोर ३० मार्च को होनेवाला है। इसमें उस सभा के नियम स्थिर करके उसकी रजिस्टरी कराई जायगी ग्रोर भविष्यत् में उसको क्या क्या काम करने चाहिएं, इसके विषय में निश्चय किया जायगा। भारतधर्म्ममहामण्डल को स्थापित हुए ग्राज कई वर्ष हुए, ग्रोर उसके लिये लाखों रुपये का चन्दा भी हुग्रा, पर ग्राज तक यह विदित न हुग्रा कि उस महामण्डल ने केवल कई बेर बड़ी बड़ी सभाएं करके कुछ रेज़ोल्यूशनों के स्वीकार करने के ग्रतिरिक्त ग्रोर क्या किया। ग्रस्तु "गतं न शोचामि" के ग्रनुसार ग्रब बीती बात को बिसार ही देना उचित है। हमारी प्रार्थना है कि इस मथुरावाले मण्डल में एकत्रित महाशयगण ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि भविष्यत् में उसके कार्य्यों पर ग्राक्षेप करने ग्रोर दुःख प्रगट करने का ग्रवसर किसीको प्राप्त न हो। मण्डल का मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिए कि संस्कृत के ग्रार्य ग्रन्थों को ग्रनुवादसहित प्रकाशित करें, बड़े बड़े ग्रन्थों का सारांश बनवावें, जिन ग्रन्थों की सत्यता ग्रोर प्राचीनता के विषय में विद्वानों का मतभेद है, ग्रोर जिनमें ऐसी बातें हैं कि जो इतिहासों के दृढ़ प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकतीं, उनकी पूरी पूरी निष्पक्ष हो कर जांच करें ग्रोर देखें कि कहां तक क्षेपक कथाग्रों का ग्रंश उनमें मिल गया है। दूसरा उद्देश्य धर्म्ममण्डल का ग्रनाथ बालकों की रक्षा, धार्म्मिक शिक्षा ग्रोर देश भाषा का प्रचार होना चाहिए। इसके कार्यकर्त्ता ऐसे पुरुष होने चाहिएं जो दृढ़प्रतिज्ञ, सत्यप्रिय, निस्पृह, विद्वान, धार्म्मिक, सच्चरित्र ग्रोर उद्योगी हों। ग्राशा है कि मण्डल के सभासद्गण इन बातों पर पूरा पूरा विचार कर देश का हित करेंगे। हमारी समझ में इस समय जितनी सभा या समाज भारतवर्ष में वर्त्तमान हैं, सबका उद्देश्य देश का हित करना है, ग्रोर इसके लिये उन्होंने भिन्न भिन्न पथों का ग्रवलम्बन किया है। मार्ग चाहे भिन्न हों, सामग्री चाहे दूसरी है, जाने में समय चाहे ग्रधिक या कम लगे, परन्तु पहुंचा सब एक ही स्थान पर चाहते हैं, ग्रन्तिम उद्देश्य सबके एक हैं। ग्रोर यही एक मुख्य कारण है कि इन पथिकों में परस्पर प्रीति हो, वे एक दूसरे का हित चाहें। द्वेष ग्रोर ईर्षा से एक दूसरे के विरोध ग्रोर नष्ट करने का उद्योग न करें। हां, यदि हम ईर्षा किया चाहें तो केवल इसी बात में कि देखें कौन ग्रधिक शीघ्रता से ग्रपने उद्देश्यों को पूर्ण कर ग्रागे बढ़ सकता है। हमें विश्वास है, भिन्न भिन्न विचारों के लीडर लोग ग्रापस में फूट न फैलने देंगे; जहां तक हो सके वे ऐसा उद्योग करेंगे कि सब लोग मिलकर काम करें।

***

ग्रागामी जनवरी मास में दिल्ली में एक बड़ा भारी दर्बार होगा। इसकी धूमधाम ग्रभी से मच रही है, तैय्यारियां हो रही हैं। दिल्ली की भूमि भी विचित्र है। इसी भूमि पर महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया, यहीं महाभारत का घोर युद्ध हो देश के ग्रनुपमेय वीर ग्रोर विद्वानों का नाश हुग्रा, यहीं चौहानों के ग्रटल राज्य के निमित्त लोहखम्भ गाड़ा गया, यहां पृथ्वीराज का ग्रभ्युदय, यहीं उसके युद्ध ग्रोर यहीं उसका ग्रन्त हुग्रा। इसी भूमि पर बाबर ने इब्राहिम लोदी को जीत भारत के भाग्य को पलटा, यहीं ग्रकबर ने हेमू को जीत ग्रपने राज्य

को दृढ़ किया, यहीं सन १७६१ में मरहट्टों के भाग्य ने पलटा खाया और उसी दिन से भारतवर्ष में हिन्दूराजत्व की पूर्ण आहुति हुई। इसी स्थान के निकट से सन १८५७ की विद्रोहाग्नि भड़की. यहीं सन १८७५ का बड़ा दर्बार हुआ, और अब १ जनवरी, सन १९०३, को फिर यहां बड़ा भारी दर्बार राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड के राज्यतिलकोत्सव के उपलक्ष्य में होनेवाला है। इसीसे हम कहते हैं कि दिल्ली की भूमि विचित्र है। भूतकाल में तो यहां बड़ी बड़ी घटनाएं और बड़े बड़े उत्सव हो चुके हैं और भविष्यत् में अभी इस भूमि के भाग्य में क्या लिखा है इसे कौन कह सकता है। एक समय वह था कि यही दिल्ली विद्वानों और वीर लोगों का निवासस्थल हो रही थी और एक समय अब आ गया है कि न वहां विद्वान ही हैं और न वीर ही ;—अब तो वहां व्यापार की धुन है, इसीकी उन्नति है। न जाने क्या इसीमें देश का भला होने वाला है ?

***

इसी सम्बन्ध में एक बात का विचार करना और भी आवश्यक है कि राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड का देशी नाम क्या होना चाहिए। हम भारतवर्ष के रहनेवाले उन्हें किस नाम से सम्बोधन किया करें ? कुछ लोगों का प्रस्ताव है कि वे "क़ैसर-हिन्द" कहलावें। परन्तु क़ैसर उपाधि जर्मन एम्परर की है और हिन्द से भारतवर्ष के उत्तरी भाग का बोध होता है। इस लिये हमारे राजराजेश्वर की यह उपाधि उपयुक्त न होगी। दूसरे कुछ लोगों का यह कहना है कि उनकी उपाधि शहनशाह हिन्द हो। इस फारसी शब्द से लोगों का ध्यान सहसा उस ओर चला जाता है जब कि भारतवर्ष में घोर मुसलमानी अत्याचार होता था और प्रजा को विशेष कष्ट उठाना पड़ता था। अतएव हमारी सम्मति में यह नाम भारतवासी मात्र को प्रिय न हो सकैगा। इस समय भारतवर्ष में सुख और शान्ति है। हमें विश्वास है कि ऐसे किसी नाम या उपाधि का ग्रहण न किया जायगा जिससे लोगों को सदा दुःखमय समयों का स्मरण बना रहे। हमारी सम्मति में सम्राट वा राजराजेश्वर से बढ़ कर और कोई उपयुक्त उपाधि नहीं हो सकती। इस शब्द का सम्बन्ध भारतवर्ष के चक्रवर्ती राजाओं से है,—जब यह देश उन्नति के शिखर पर था और प्रजा मात्र को सुख और शान्ति थी।

***

हम सहर्ष "चीन में तेरह मास" की प्राप्ति स्वीकार करते हैं। हिन्दी में अब तक हमने ऐसी दूसरी पुस्तक नहीं देखी है। इस पुस्तक में "चीन में सन १९००—१ के महा संग्राम का आँखों देखा सम्पूर्ण वृत्तान्त, तथा चीन और जापान का संक्षिप्त इतिहास, रीति नीति, चीनियों के धर्म विश्वास, खान पान, व्यवहार बर्ताव, फौजी और देशी वृत्तान्त, नामी मन्दिरों, इमारतों आदि के सर्वाङ्ग वर्णन, वाक्सर विद्रोह, विदेशीय अधिकार," इत्यादि विषयों का वर्णन बड़ी सुन्दर और उपयुक्त रीति से दिया है। पुस्तक बड़े बड़े ३२० पृष्ठों की है और मूल्य केवल १॥) रु० ही है। यों तो हिन्दी में अनेक पुस्तकें छप गई हैं और नित्य छपती जाती हैं, परन्तु इस बात के कहने में हमें संकोच नहीं है कि ऐसी पुस्तक दूसरी अभी नहीं छपी है। भारतवासियों के लिये समयोपयुक्त शिक्षाओं का यह भंडार है। इस ग्रन्थ के रचयिता ठाकुर गदाधर सिंह (दिलकुशा, लखनऊ) हैं, जो युद्ध में स्वयं वर्तमान थे और जिन्होंने अपनी आँखों का देखा हुआ सब वृत्तान्त लिखा है। भिन्न भिन्न देशीय सिपाहियों का रहन सहन, उनका बर्ताव, उनकी वीरता, उनकी क्रूरता अथवा दयालुता, इन सब बातों का ज्ञान इस पुस्तक के पढ़ने से पूरा पूरा प्राप्त होता है। भारतवासी राजपूत सेना को खान पान के सम्बन्ध में कैसे कैसे कष्ट उठाने पड़े और फिर वे किस वीरता से लड़े, ये सब लोगों के जानने और ध्यान

देने योग्य बातें हैं। जापानी सिपाहियों की वीरता का वृत्तान्त पढ़ हमें तो भारतवर्ष के प्राचीन समय का पूरा पूरा स्मरण हो आया। सारांश यह कि यह पुस्तक ऐसी है कि जिसे प्रत्येक भारतहितैषी को खूब ध्यान से पढ़ना और विचार करना चाहिए। इसकी भाषा में यद्यपि दोष रह गए हैं, किन्तु और गुणों के आगे इनकी गिनती नहीं हो सकती, क्योंकि जहां गुणों का आधिक्य रहता है, वहां एक आधा दोष भी गुण ही की गिनती में हो जाता है। हिन्दीप्रेमी मात्र को उचित है कि इस पुस्तक को मंगवा लेखक का उत्साह बढ़ावें और आप उसे पढ़ लाभ उठावें। यह पुस्तक म्यानेजर फ्रेण्ड ऐण्ड को० मथुरा के पास मिल सकती है।

——

वर्णसवैया छन्द

कई एक छन्दों में जो भाषा में सवैया के नाम से लिखे पढ़े जाते हैं, प्रायः देखा जाता है कि जिन जिन स्थानों में गुरु अर्थात् दीर्घ वर्णों के आने का नियम है, उन उन स्थानों में तो गुरु अवश्य आते हैं, परन्तु जिन जिन स्थानों में लघु अर्थात् ह्रस्व वर्णों के आने का नियम है, उन उन स्थानों पर भी बहुधा वर्ण गुरु स्वरूप में पाए जाते हैं। पर शब्दों के यथार्थ रीति पर प्रयुक्त होने के कारण इस रूपान्तर से उन छन्दों की गति नहीं बिगड़ती; जैसे कि इस सवैया में—

पायनि नूपुर मंजु बजै
कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई।
स्यामरे अंग लसै पट पीत
हियें हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथें किरीट बड़े दृग चंचल
मंद हँसी मुख चंद जुन्हाई।
जै जगमन्दिर दीपक सुंदर
श्रीव्रज दूलह देव कन्हाई॥

यह छंद सात भगण और दो गुरु का है। एक गुरु और दो लघु के समूह की संज्ञा भगण है। इसी प्रकार के सात समूह और उनके अनन्तर दो गुरु इस छन्द के प्रति पाद में पड़ने चाहिएं। इस नियमानुसार पहिला, चौथा, सातवाँ, दसवाँ, तेरहवाँ, सोलहवाँ, उन्नीसवाँ, बाइसवाँ, तथा तेइसवाँ वर्ण प्रति पाद का दीर्घ होना चाहिए। यह बात तो देखने से अवश्य पाई जाती है। इसी नियमानुसार दूसरा, तीसरा, पाँचवाँ, छठा, आठवाँ, नवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ, चौदहवाँ, पंद्रहवाँ, सत्रहवाँ, अट्ठारहवाँ, बीसवाँ, तथा इक्कीसवाँ वर्ण प्रति पाद में लघु होना चाहिए; पर इस बात का निर्वाह पूर्णतया नहीं होता। दूसरे चरण में तीसरा वर्ण 'रे,' तथा तीसरे चरण में दूसरा वर्ण 'थें' गुरु के रूप में हैं। सभी प्रकार के प्रायः सभी सवैयाओं पर ध्यान देने से यह बात दृष्टिगोचर होती है। पर प्रयुक्त शब्दों के यथार्थ व्यवहार के कारण इस बात से छन्दों की चाल बिगड़ने नहीं पाती, वरन् यदि विचारा जाय तो उनमें एक प्रकार की विशेष रोचकता आजाती है। इस विषय में पिंगलकारों को ऐसे वाक्य काम देते हैं—

"दीरघ कौं लघु करि पढ़ैं लघुही मान्यो जात।"

अब यह बात विचारने के योग्य है कि क्या चाहे किसी शैली से शब्द आए हों, पर गुरु वर्णों को छन्दों की आवश्यकतानुसार लघु करके पढ़ने से छन्द की गति यथेष्ट बनी रह सकती है, अथवा शब्दों में किसी विशेष प्रकार के क्रम तथा वर्णसंख्या के होने ही पर गुरुवर्ण लघु करके इस प्रकार से पढ़ा जा सकता है कि छन्दों की चाल ढाल न बिगड़े?

यदि पहिली बात स्वीकृत की जाय तो इस पाद को भी निर्दोष मानना पड़ेगा—

आकाश में उनये कारे बादर दादर मोर हैं
शोर मचावैं।*

* यह चरण भी सात भगण और दो गुरु का है।

पर इस में दूसरे तथा आठवें वर्णों के लघु रूप से न पड़ने के कारण छन्द की गति बिगड़ जाती है। अब यदि यह माना जाय कि दूसरा तथा आठवाँ वर्ण गुरु के रुप से आही नहीं सकता, तो ऐसे उदाहरण बहुत पाए जाते हैं जिनमें दूसरे अथवा आठवें वर्ण के गुरु रूप में होने पर भी गति यथेष्ट बनी रहती है; जैसे—

दूसरा वर्ण गुरु के रूप में

'माथे किरीट बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुख चंद जुन्हाई।'

आठवाँ वर्ण गुरु रूप में

'देव मैं सीस बसायो सनेह कै भाल मृगम्मद बंद के भाष्यो।'

इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि दूसरे तथा आठवें वर्णों के विषय में यह नियम नहीं किया जा सकता कि गुरुरूप से न पड़ें। इसी प्रकार यह भी दिखलाया जा सकता है कि किसी विशेष स्थान के लघु के विषय में गुरुरूप से न आने का नियम नहीं किया जा सकता।

अब यदि यह कहा जाय कि एक ही चरण में दूसरे तथा आठवें दोनों वर्णों के एक साथ ही गुरु रूप से आने के कारण गति बिगड़ती है, तो ऐसे उदाहरण भी अनेक प्राप्त होते हैं जिनमें इन दोनों वर्णों के गुरुरूप में होने पर भी छन्द सुढाल रहता है; जैसे—

"भादों की कारी अँध्यारी घटा
झुकि पावस मंद फुही बरसावै।"

इसमें दूसरा वर्ण 'दों' और आठवाँ वर्ण 'रीं' दोनों गुरु रूप से आए हैं। इसी उदाहरण से यह भी पाया जाता है कि एक ही चरण में कई एक लघु, गुरुरूप से आ सकते हैं। इस उदाहरण में चार स्थानों के लघु गुरुरूप में आए हैं। शब्दों की बाँट उत्तम होने से और भी अधिक स्थानों के लघु गुरुरूप से आ सकते हैं॥

ऊपर जो बातें लिखी गई हैं उनसे विदित होता है कि सवैया छन्दों में लघुओं के स्थानों पर वर्णों के गुरु रूप से आने न आने की योग्यता केवल शब्दों के क्रमविशेष और वर्णसंख्या पर निर्भर है; स्थान विशेष अथवा स्थानों की संख्या-विशेष से वह कोई सम्बन्ध सर्वथा नहीं रखती। एक अवस्था में तो लघु के स्थान पर वर्ण के गुरुरूप से आने के कारण गति बिगड़ जाती है और दूसरी अवस्था में नहीं बिगड़ती। उदाहरण के लिये जो सवैया और पाद ऊपर लिखे गए हैं वे एक ही प्रकार के हैं। इसी रीति पर और प्रकारों के सवैयाओं के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

श्रीमान् राजा कमलानंद सिंह महोदय श्रीनगराधीश से कलकत्ते में एक दिन मुझसे इस विषय में बात चीत हुई थी। प्रायः लोग इस बात को बड़ी कठिनता से समझते, पर उक्त श्रीमान ने कहते ही इस विषय की कठिनाइयाँ भली भांति समझ लीं और सर्वसाधारण के लाभार्थ मुझसे आग्रह किया कि यह बात निश्चित होकर अवश्य प्रकाशित होनी चाहिए कि किस किस दशा में लघुओं के स्थानों पर वर्ण गुरु रूप से आ सकते हैं और किस किस दशा में नहीं आ सकते। उन्हीं के अनुरोध से यह लेख लिखा जाता है। यह विषय अद्यावधि किसी ग्रन्थ में लिखा नहीं गया है। पहिले पहल मैं ही इस पर हाथ डालता हूं। अतः सम्भावना है कि नियम सम्यक् रूप से स्थापित न हो सकें, क्योंकि किसी विषय पर प्रथम ही प्रथम जो कुछ लिखा जाता है उसमें त्रुटियों का विशेष होना आश्चर्य नहीं है। विद्वज्जनों से प्रार्थना है कि जो नियम इस लेख में स्थिर किए जाते हैं यदि उनमें कुछ त्रुटियां दृष्टिगोचर हों तो क्षमापूर्वक मुझ पर विदित करके अनुग्रहीत करें जिसमें यथासंभव सुधार की जाय।

इन नियमों के पूर्व यह लिखना उचित ज्ञात होता है कि वर्णसवैया कई प्रकार के प्रचलित हैं

और उनके नाम तथा लक्षण क्या क्या हैं। अतः पहिले यही विषय लिखा जाता है।

वर्णसवैया के भेद, नाम तथा लक्षण।

पद्यात्मक छन्द दो प्रकार के होते हैं; मात्रिक और वर्णिक। जिन छन्दों के चरणों में मात्रा संख्या नियत रहती है, पर वर्ण की संख्या नियत नहीं होती और न लघु गुरु का कोई विशेष क्रम नियत होता है, उनको मात्रिक छन्द कहते हैं। जिन छन्दों के चरणों में वर्णों की संख्या नियत रहती है उन्हें वर्णिक छन्द कहते हैं। वर्णसवैया के सब भेद वर्णिक छन्दों ही में हैं, क्योंकि इनमें वर्णों की संख्या नियत होती है।

वर्णिक छन्द फिर दो प्रकार के होते हैं, नियत-गुरु-लघु-पादात्मक और नियतानियत-लघु-गुरु-पादात्मक। जिन छन्दों के चरणों में गुरु लघु के किसी विशेष क्रम से पड़ने का नियम होता है, उन्हें नियत-लघु-गुरु-पादात्मक कहते हैं। जिन छन्दों के चरणों में एक अथवा अधिक लघु गुरु के तो स्थान विशेष पर रहने का नियम हो, पर शेष वर्णों के विषय में कोई नियम न हो, उनको नियतानियत-लघु-गुरु-पादात्मक कहते हैं। सवैया छन्दों के चरणों में वर्णों के लघु-गुरु का क्रम नियत है, अतएव ये वर्णिक छन्दों में नियत-लघु-गुरु-पादात्मक हैं।

फिर नियत-लघु-गुरु-पादात्मक छन्द, चरणों के समान होने न होने पर तीन प्रकार के हैं; समपाद, अर्द्धसमपाद और विषमपाद। जिन छन्दों के चारों चरण समान होते हैं उनको समपाद, जिनके दो दो चरण आपस में समान होते हैं उनको अर्द्धसमपाद और जिनके चारों चरण असमान होते हैं, उनको विषमपाद कहते हैं। सवैया छन्दों के चारों चरण समान होते हैं, अतएव ये समपाद हैं।

वर्णवृत्त छन्दों में एक वर्ण से लेकर २६ वर्ण पर्यन्त के छन्दों की संज्ञा गणप्रस्तारप्रकाश में पर्यातक और २६ वर्णों से अधिक के छन्दों की संज्ञा दण्डक लिखी है। सवैया छन्द पर्यातक हैं।

ऊपर लिखे हुए प्रभेदों से ज्ञात हुआ कि सवैया छन्द वर्णवृत्तों में नियत गुरुलघ्वात्मक समपाद पर्यातक हैं।

अब सवैया के भेद लिखे जाते हैं। देवकवि ने काव्यरसायन नामक ग्रन्थ में बाइस वर्णों से लेकर छब्बीस वर्णों तक के बारह प्रकार के सवैया छन्दों के नाम, लक्षण और उदाहरण लिखे हैं। दास कबि ने छन्दार्णवपिंगल में इन प्रकारों के अतिरिक्त तीन और छन्दों को भी सवैया ही के अन्तर्गत लिखा है। देवकवि तथा और कवियों के लिखे हुए सवैयाओं के किसी किसी नाम में अन्तर है।

हम इस लेख में देवकवि के दिए हुए नाम रख कर लक्षण तथा उदाहरण लिखते हैं। अन्य ग्रन्थकारों के दिए हुए नाम भी अन्तर होने पर विदित कर दिए जायंगे।

बाइस वर्णों का सवैया।

बाइस वर्णों का एक सवैया छन्द मदिरा नामक है। इसके प्रति पाद में सात भगण* और अंत में एक गुरु होता है।

(उदाहरण)

दीन अधीन ह्वै पाय परी हौं
अरी उपकार कों धावहि तू।
मेरी दसा लखि होहि प्रसन्न
दया उर अंतर ल्यावहि तू॥
नैननि के उर की बिरहागिनि
एकहि बार बुझावहि तू।
श्रीमनमोहन रूपसुधा
मदिरा मद मोहिँ छकावहि तू॥

* भगण तीन वर्णों के ऐसे समूह को कहते हैं जिसके आदि में एक गुरु और उसके पश्चात् दो लघु होते हैं॥

तेइस वर्णों के सवैया ।

तेइस वर्णों के तीन सवैया प्रचलित हैं; मालती, चित्रपदा, मल्लिका ।

मालती

मालती, जिसका नाम दास कबि ने मत्तगयंद, ग्रैार बाबा रामदास पटियालेवाले ने इंदव लिखा है, सात भगण ग्रैार दो गुरु का होता है ;—ग्रर्थात् इसके प्रति पाद में तेइस वर्ण इस क्रम से पड़ते हैं कि पहिले तो सात भगण होते हैं ग्रैार ग्रंत में दो गुरु ।

(उदाहरण)

पैारि मैं खेलन ग्रावति यै न तो
　　ग्रालिन के मत मैं परती क्यों ।
देव गुपालहिँ देखति यै न तो
　　या बिरहानल मैं बरती क्यों ॥
बापुरी मंजु रसाल की बाल सु भाल
　　सी ह्वै उर मैं ग्ररती क्यों ।
कोमल कूकि कै कैलिया क्रूर
　　करेजन की किरचैं करती क्यों ॥

चित्रपदा

चित्रपदा के प्रत्येक पाद में सात भगण ग्रैार ग्रंत में एक गुरु तथा एक लघु होते हैं । इसीका नाम दासादि कबियों ने चकोर लिखा है ।

(उदाहरण)

ग्रैाधि को ग्राधिक ग्रोस रह्यो
　　ग्ररु ग्रायो न री पिय प्रान ग्रधार ।
तौ लगि मोर पपीहन हू मिलि
　　कुंज परी पिक पुंज पुकार ॥
ग्राज ग्रटा पर जो रहि है न
　　घटा गरजी बरजी बहु बार ।
नैसिक पावस बूंद लगी
　　उमगी ग्रँखियान ग्रखंडित धार ॥

मल्लिका

इस छन्द के प्रत्येक पाद के ग्रादि में एक लघु, उसके पश्चात् सात भगण ग्रैार ग्रंत में एक गुरु इस क्रम से वर्ण ग्राते हैं । इसीका नाम दास कवि ने मानिनी ग्रैार भानु कवि ने सुमुखी लिखा है ।

(उदाहरण)

सखीन सों देत उराहनो नित्त
　　सुचित्त सकोच सुने लहियै ।
उन्हैं ग्ररु मोहिँ न जानि कछू
　　पहिचानि नहीं जु मिलै रहियै ॥
चवाव चल्यो चहुं ग्रोर कहां
　　लगि जीभ चवा इनकी गहियै ।
ग्रचानक वे जु कहीं मिलि जाहिँ
　　हहा कहिये री कहा कहियै ॥

चौबीस वर्णों के सवैया ।

देव ने चैाबीस वर्णों के पाँच सवैया लिखे हैं—माधवी, मंजरी, दुर्मिला, किरीट ग्रैार ग्रलसा ।

माधवी

माधवी छन्द के ग्रादि में एक लघु, फिर सात भगण ग्रैार ग्रंत में दो गुरु होते हैं । दास कबि ने इसका नाम मंजरी ग्रैार भानु कवि ने बाम लिखा है ।

(उदाहरण)

बसंत से ग्राज बने ब्रज राज
　　सपल्लव लाल छरी बर हाथे ।
सुकुंडल के मुकता बिच हैं
　　मकरंद की बुंदन की छबि नाथे ॥
मलिंद बने कच घूंघरवारे
　　प्रसून घने पहुंचोन में गाथे ।
गरे जिमि किंशुक गुंज की माल
　　रसाल की मंजुल मंजरी माथे ॥

मंजरी

इस छन्द में एक लघु ग्रारम्भ में, फिर सात भगण, ग्रैार ग्रंत में एक गुरु ग्रैार एक लघु होते हैं । इसीका नाम दास कवि ने मुक्तहरा ग्रैार रामदास ने माधव लिखा है ।

(उदाहरण)

उठी अकुलाइ सुनी जब नेकु
कला परबीन लला ब्रजराज ।
बिसारि दई कहि देव तुम्हैं
अवलोकत ही अब लोक की लाज ॥
इते पर ग्रौर चवाव चल्यो
बरजै गरजै गुरुलोक की लाज ।
कहाँ लगि लाल कछू कहियै
इतनी सहियै सब रावरे काज ॥

दुर्मिला

दुर्मिलाछन्द के प्रति पाद में दो लघु फिर सात भगण ग्रौर अन्त में एक गुरु होता है ।

(उदाहरण)

सुनि के धुनि चातक मोरन की
चहुं ग्रोरनि कोकिल कूकनि सों ।
अनुराग भरे हरि बागन में
सखि रागत राग अचूकनि सों ॥
कविदेव घटा उनई जु नई
बनभूमि भई दल दूकनि सों ।
रँग राती हरी हहराती लता
झुकि जाती समीर के झूकनि सों ॥

किरीट

किरीट नामक सवैया का प्रति पाद आठ भगण का होता है ।

(उदाहरण)

मंजुल मंजरी पिंजरी सी ह्वै
मनोज के ओज सम्हारति चीरन ।
भूषन प्यास न नींद परै
परी प्रेम अजीरन के जुर जीरन ॥
देव घरी पल जाति घुरी
अंसुवान के नीर उसास समीरन ।
आहन जाति अहीर अहै
तुम्हैं कान्ह कहा कहौं काहू की पीरन ॥

अलसा

अलसा छन्द के प्रत्येक पाद में सात भगण ग्रौर अंत में एक रगण* होता है । इसका नाम दास कवि ने अरसात लिखा है ग्रौर रामदास ने मकरंद ।

(उदाहरण)

लोग लोगाइनि होरी लगाइ
मिला मिलि चारु न भेटत ही बन्यो ।
देवजू चंदन चूर कपूर
लिलारनि लै लै लपेटत ही बन्यो ॥
वे इहि ग्रौसर आये इहाँ
समुदाय हियो न समेटत ही बन्यो ।
कोनी अनाकनी यों मुख मोरि
पै जोरि भुजा भइ भेटत ही बन्यो ॥

पच्चीस वर्णों के सवैया छन्द

पचीस वर्णों के दो सवैया प्रचलित हैं; कमला ग्रौर सुधा ।

कमला

कमला के प्रति पाद के आदि में दो लघु, फिर सात भगण ग्रौर अंत में दो गुरु होते हैं । इसका नाम दास कवि ने माधव, रामदास ने सुखदा ग्रौर भानु कवि ने सुंदरी लिखा है ।

(उदाहरण)

रस सिंधु तरी रति की पुतरी
उतरी रंग भौन तें इंदु उदोती ।
सरसार सरूप सुधारस ओज
सुमोह मनोज सरासन गोती ॥
अंग अंग अनंग तरंगत रंग
उरोज रथंग बिहंगम जोती ।
पलकैं अरुनै झलकैं अरु नैन
छुटी अलकैं झलकैं लर मोती ॥

सुधा

इसके प्रत्येक चरण के आदि में दो लघु, फिर सात भगण ग्रौर अंत में एक गुरु ग्रौर एक लघु

---

* रगण तीन वर्णों के ऐसे समूह को कहते हैं जिसके आदि ग्रौर अंत में गुरु ग्रौर मध्य में लघु हो ॥

होते हैं। इसका नाम राम दास जी ने अरबिन्द लिखा है

(उदाहरण)

अधरात अध्यार की मेड़ घटा
घुमड़ी छुटी बिज्जु छटा चहुं ओर।
कुल दादुर झिल्ली पुकारैं करैं
किलकारैं करैं पिक चातक मोर॥
कविदेव अमावस पावस रैनि
अज्यो बिसरैन घनी घन घोर।
तजि मान तिया पिय कंठ लगी
लुकि मैान धरे झुकि पैान झकोर॥

छब्बीस वर्णों का सवैया।

छब्बीस वर्णों का एक सवैया प्रचलित है; देवकवि ने इसका नाम ललिता, दासकवि ने मालती, रामदास जी ने सावन और भानकवि ने सुख लिखा है। इसके प्रति पाद में दो लघु और आठ भगण होते हैं।

(उदाहरण)

बिन गोकुलचन्द अमावस पावस
भीषन भीषन सेज सरङ्गनि।
उर धीर जरै चक मेचक रुप
चढ़ी जमुना जलधार तरङ्गनि॥
अरि सम्बर से उमड़े घन अम्बर
अम्बर मैं बरु अम्बर रङ्गनि।
भय भार सम्हारन देति नहीं
चपला चमकार अंध्यार अरङ्गनि॥

ये बारह प्रकार के सवैया सामान्यतः सभी कवियों ने लिखे हैं। दासकवि ने जो और तीन छन्द सवैया ही के अन्तर्गत लिखे हैं उनके लक्षण उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

भुजंग छन्द।

इस छन्द को दासकवि ने आठ यगण* का लिखा है।

(उदाहरण)

तुम्हैं देखिबे की महा चाह बाढ़ी
मिलापै बिचारै सराहै स्मरै जू।
रहै बैठि न्यारी घटा देखि कारी
बिहारी बिहारी बिहारी ररै जू॥
भई काल बैरी सी दैारी फिरै आजु
बैठी दशा ईश काधौं करै जू।
बिथा मैं गसी सी भुजंगै डसी सी
छरी सी भरी सी घरी सी भरैजू॥

लक्षी छन्द।

इस छन्द को दासकवि ने आठ रगण का लिखा है।

(उदाहरण)

बादिही आइ कै बीर मो ऐन मैं
बैन के घाव की वो करै थावरी।
आपनी तत्व ही एक ही वा कह्यो
कैान की वो करै बात फैलावरी॥
दास हैां कान्ह दासी बिना दाम की
छाड़ि दीन्यो सबै बंस बंसावरी।
ज्ञान सिक्षानि तासैां जुदी रक्षिये
लक्षिये जाहि प्रत्यक्षही बावरी॥

आभार छन्द।

इस छन्द में दासकवि ने आठ तगण* लिखे हैं।

(उदाहरण)

ये गेह के लोग धैां कातिकी न्हान को
ठानि हैं कालिह एकाकही गैान।
सम्बाद कै बादिही बावरी होइ को
आजु आली रहैा ठाने ही मैान॥
हैां जानती हैां न धैां सीख कैाने
दयो नन्द को लाल गोपाल धैां कैान।
आभार ह्यां छार को ताहि को सैांपि कै
मोहि औ तोहि ह्यां राखते मैान॥

* यगण तीन वर्णों के ऐसे समूह को कहते हैं जिसके आदि में एक लघु और फिर दो गुरु हों।

* तगण तीन वर्णों के ऐसे समूह को कहते हैं जिसके आदि में दो गुरु और अंत में एक लघु हो॥

ऊपर जो बातें लिखी गई हैं उनसे सिद्ध होता है कि सवैया छन्दों में नियत लघु वर्णों के गुरु रूप से आने और उनके लघु करके पढ़े जाने के निमित्त किसी विशेष संख्यक स्थान का नियम नहीं है, अर्थात् प्रत्येक स्थान का नियत लघु गुरु के रूप से आकर लघु पढ़ा जा सकता है; और न यही नियत है कि प्रति पाद में कै लघु से अधिक गुरु रूप में नहीं जा सकते। केवल कई एक विशेष दशाओं ही में लघु वर्ण गुरु रूप से आकर लघु पढ़े जाने में अड़चल करते हैं। अब आगे वह दशाएं नियत की जाती हैं जिनमें लघु वर्ण गुरुरूप से नहीं आ सकते।

(१) यदि किसी नियत गुरु स्थान का वर्ण और उसके पूर्व का वर्ण दोनों एक हो शब्द में पड़ें और उस नियत गुरु स्थान के पूर्व का वह वर्ण गुरुरूप से आवे तो छन्द की गति बिगड़ जायगी। जैसे—

मेघ आकाश में छाइ रहे हैं
जिन्हें लखि मोर हैं शोर मचावत।

इस में चौथा वर्ण नियत गुरु का और उसके पूर्व का वर्ण आ दोनों एक ही शब्द आकाश में पड़े हैं, अतएव आ के गुरुरूप से आने के कारण गति बिगड़ती है। यदि यह दोनों एक हो शब्द में न पड़ते तो तीसरा वर्ण गुरुरूप से आकर बिना गति बिगाड़े लघु पढ़ा जा सकता। जैसे—

मेघ हैं छाये सुअंबर माहिं
जिन्हें लखि मोर हैं शोर मचावत।

इसमें यद्यपि तीसरा वर्ण गुरुरूप से आया है, पर चौथे वर्ण से एक ही शब्द में नहीं मिला है: अतः छन्द की गति नहीं बिगड़ती।

(२) जो दो लघु एकत्रित आते हैं यदि वे दोनों एक ही शब्द के वर्ण हों और पहिला लघु गुरु रूप से आवे, तो गति को बिगाड़ देगा।

हैं कारे बादर अंबर छाये
जिन्हें लखि मोर हैं शोर मचावत।

इसमें दूसरा वर्ण का और तीसरा वर्ण रे दोनों नियत लघु स्थानों के वर्ण एकही शब्द कारे में आए हैं और दूसरा वर्ण गुरुरूप से है, अतएव गति बिगड़ती है। यदि ये दोनों एक ही शब्द में न पड़ते, तो दूसरे वर्ण के गुरुरूप में होने पर भी गति बनी रहती। जैसे—

आली हैं बादर अंबर छाये
जिन्हें लखि मोर हैं शोर मचावत।

इसमें यद्यपि दूसरा वर्ण गुरुरूप से आया है, पर तीसरे वर्ण से एकही शब्द में नहीं मिला है; अतः छंद की गति नहीं बिगड़ती।

(३) जो लघु किसी किसी सवैया छन्द के अंत में होते हैं वे गुरु रूप से न आने चाहिएं। जैसे—

उठी अकुलाइ सुनी जब नेकु
कला परबीन लला ब्रजराज।

यह मंजरी छंद है, इसके अंत में लघु का नियम है। यदि राज को राजै करें तो छन्द बदल कर माधवी हो जाता है।

यह जो तीन नियम ऊपर लिखे गए हैं, इनमें पहिला नियम तो पन्द्रहों सवैयाओं में चरितार्थ होता है।

दूसरा नियम केवल पहिले के बारह सवैया छन्दों में काम देता है, और तीसरा नियम केवल लघ्वान्त सवैया छन्दों के निमित्त है॥

जगन्नाथदास, बी, ए, (रत्नाकर)

मदन दहन

[गत अंक के आगे]

बन देवी बन देव सेवित हिमगिरि कन्यका
सोहति अनुपम भेव, शंकर पद अनुराग रत ॥५१॥

(५२)

पुहुप असोकनि पदुमराग मनिप्रभा लजावति
कुसुम कनेरनि कनक कांति छबिहीन बनावति
सिन्धुवार के सुमन मुकुत माला सम धारे
मधु फूलनही सकल मनोहर गात सँवारे

बच्छोज भार भावक झुकी बाल-सूर-सम अरुन पट
धरि, कुसुमित गुच्छनि पात युत भई नमित
लतिका निपट ॥ ५० ॥ (५३-५४)

स्मर-धनु-ज्या मनु दुतिय,* बकुल माला कटि धारे।
छुद्र घंटिका सरिस, चलत तेहि खसत सँम्हारे ॥
अधर बिम्ब ढिग स्वास-सुगन्धित हित ललचाई।
तृष्णा पूरित बार बार मधुकर मड़राई ॥

डरि तासों मृग छौना सरिस चञ्चल नैन नचावती।
निज क्रीड़ा-पङ्कज सों सकुचि छिन छिन ताहि
उड़ावती ॥ ५१ ॥ (५५-५६) ॥

निरखि जासु लावण्य रतिहु कर मद दुरि भाज्यो।
लाज-सृष्टि कर हेतु जाहि सन दृढ़ता साज्यो ॥
तेहि गिरिजहि लखि मीनकेतु साहस पुनि धारयो
इन्द्रियजित शिव माहिँ काज की सिद्धि बिचारयो ॥
निज होनहार पति द्वार जब भई प्राप्त सैलेसजा
लखि परम आतमा निज हृदय, तज्यो ध्यान त्रिभुवन
पिता ॥ ५२ ॥ (५७-५८) ॥

आसन-माँहि बहु जतन जासु धारत सहसानन
मन्द मन्द हर मोचि श्वास छाँड़यो बीरासन ॥
तब नन्दी कर जोरि तुरत शिव सम्मुख जाई।
सेवा हित गिरिराज-सुता की कहयो अवाई ॥
सो भृकुटि-सहित-चख चालि प्रभु अङ्गीकृत
संज्ञहि करयो।
तब सकुचि गौरि मुख मोरि कछु, लताभवन बिच
पग धरयो ॥ ५३ ॥ (५९-६०) ॥

लघुपातन युत चुन्यो सखिन निज कर मधु फूलन,
तिन्हैं सहित परनाम समरप्यो शिव-पद-मूलन ॥
करत दण्डवत प्रभुहि उमा के नील अलक सों।
नव कनेर खसि खसे श्रवन के पात झलक सों ॥
"नहिँ आन तरुनि मुख जेहि लख्यो, लहु सो पति"
भव अस कह्यो ॥

* धनुष की दुतिय ज्या (अर्थात् ताँत) उसके दण्ड में लपेटी रहती है कि यदि धनुष पर चढ़ी हुई ताँत, (जिससे काम लिया जाता है), किसी तरह टूट जाय तो उसी समय दण्ड से खोल कर इसे चढ़ाकर काम किया जाय।

सो अौशि सत्य, बिपरीतता ईश बचन कबहुँ
लह्यो ? ॥ ५४ ॥ (६१-६२-६३)

धावत यथा पतङ्ग अनल दिसि मीचु भुलाई।
तथा, सुअौसर जानि, असमसर सङ्ग बिहाई ॥
पारबतिहि शिव निकट देखि, साध्यो धनु शायक।
ताही छिन गिरिसुता कञ्ज सम कर सुखदायक
सों, रविकिरननि सूखे कमल गङ्गधारसन जे लियो।
तिन्ह बीज-माल तपसी हरहिँ प्रेम सहित अरपित
कियो ॥ ५५ ॥ (६४-६५)

भक्ति प्रीतिबस लगे शम्भु तेहि ग्रहन करन ज्यों।
सम्मोहन शर दुसह मार धनु बीच धरयो त्यों ॥
चन्द्रोदय छिन सिन्धु-तरङ्गनि सरिस पुरारी।
चलित थोर कछु, रहे उमा मुख-चन्द निहारी ॥
करि दीप्तिमान कोमल-कदम-सम-अङ्गनि भावहि
प्रकट।
मुख मोरि, तिरछे चखन सों, रही लाज बस ह्वै
निपट ॥ ५६ ॥ (६६-६७-६८)

इन्द्रिय-जित-पन सों तदनु गो* बिकार पुनि रोधि।
जानन कारन तासु हर रहे सकल दिसि सोधि
॥ ५७ ॥ (६९)

चक्र सम धनु धरे, उद्यत करन बाण प्रहार।
सव्य चख ढिग मूठि कीन्हे लख्यो हर तहँ मार ॥
समाकुञ्चित किए दच्छिन पावँ, कन्ध झुकाय
बाम पद करि अग्र, बिलसत दुतिय नैन दबाय
॥ ५८ ॥ (७०)

निज तपस्या निरखि बाधित कोप करि त्रिपुरारि।
भए बिकट स्वरूप, जो नहिँ नेक जात निहारि ॥
भङ्ग करि भृकुटीन दीन्हो तृतिय नैन उघारि।
कढ़ी जा सों ज्वाल माल प्रचण्ड अति भयकारि
॥ ५९ ॥ (७१)

"छमहु हे प्रभु ! छमहु कोप कराल, त्रिभुवन
पाल !"।
होय व्योम प्रवृत्त जौ लगि देव-रोर बिहाल ॥

* इन्द्रियगण।

तासु प्रथमहि प्रलय करनि ललाट चख की ज्वाल।
कियो मारहि छारवत्, अति भरी तेज कराल
॥ ६० ॥ (७२)

अति अनादर-जनित गो-गति सकल रोधनहार।
कन्तनास भुलाय, रति कर मोह* किय उपकार॥
तपी हर तेहि बिघन-बिटपहि तड़ित सम झरसाय।
गगन सह भे गुप्त तरुनी-गन-समीप बिहाय ॥६१॥
(७३-७४)

यह चरित्र लखि शैलजा ह्वै भयभीत महान।
गई पिता भवनहि सपदि, मन अति किए मलान
॥ ६२ ॥

स्वारथ रत बहु लोग नेह अविचल दरसाई।
अभिमानिन बहँकाय लेहिँ निज काज बनाई॥
पै तिन पर जब परत आनि भावी कछु भारी।
तव शठ पूँछ दबाय जाहिँ कढ़ि बिरद बिसारी॥
जिमि सहसनैन रतिनाथ कहँ दिय बधाय निज
काज हित।
पुनि हरयों शम्बरासुर रतिहि, रह्यो निलज चुप
साधि तित॥ ६३ ॥

श्यामबिहारी मिश्र, एम, ए, (शिरमैार)
श्रैार
शुकदेवबिहारी मिश्र, बी, ए, (शशिभाल)

श्री गुरु रामदासजी

प्रिय पाठकगण! सिख-मतानुयायी तीन गुरुओं का जीवनचरित्र तो आप लोगों ने पढ़ा ही होगा, क्योंकि वह "सरस्वती" की गत संख्याओं में छप चुका है। यह बात तो आप लोगों से छिपी ही नहीं है कि गुरु नानकजी से लेकर गुरु गोविन्दसिंह जी तक दस महात्माओं ने गुरु की गद्दी को सुशोभित किया था। अतएव आज हम आप लोगों को उन्हीं महात्माओं में से चैाथे गुरु रामदासजी का चरित्र सुनावेंगे श्रैार यदि परमात्मा ने चाहा तो क्रमशः अवशेष छ गुरुओं का चरित्र भी हम आप लोगों के करकमलों में भेंट करेंगे।

संवत १५९१, कार्तिक बदी २, के दिन चार घड़ी दिन चढ़े माता दयाकुंवर के गर्भ से रामदास जी ने जन्मग्रहण किया था। इनके पिता हरिदास सोढी लाहोर, महल्ला चूनामण्डी, में रहते थे। उस समय वीरवर शेरशाह भारतवर्ष का बादशाह था।

दुर्भाग्यवश बाल्यावस्था में ही इनके पिता परलोक सिधार गए। अतएव धीरे धीरे इनकी अवस्था बड़ी ही दरिद्र हो गई। बड़े कष्ट से इन की विधवा माता सूत कात कर अपना श्रैार अपने एकलैाते बालक पुत्र का भरण पोषण करती थी। इस कष्ट में केवल एक समय सूखी रोटी प्राप्त होती थी, जिसे खाकर बिचारे माता श्रैार पुत्र सन्तोष से अपनी जीविका निर्वाह करते थे। परन्तु इस अवस्था में भी रामदासजी के चेहरे पर वह कान्ति विराजमान थी जो प्रायः भावी महात्माओं की आकृति में झलका करती है।

जिस समय गुरु अमरदासजी गद्दी पर बैठे, तो देश बिदेश से सिख लोग उनके दर्शनार्थ आने लगे। उस समय गुरु अमरदासजी गोइंदवाल में विराजमान थे। अतएव लाहोर से जो मण्डली उनके दर्शनार्थ रवाने हुई, कैातूहलवश रामदास जी भी उसके साथ हो लिए। जब सब कोई अमरदासजी के स्थान पर पहुंचे श्रैार उनका दर्शन कर लैाटने लगे तो रामदासजी वहीं रह गए श्रैार गुरु अमरदासजी के निकट जाकर दंड प्रणाम के बाद उन्होंने धर्म विषय पर अमरदासजी से बात चीत करनी आरम्भ की। बालक की धर्मनिष्ठा श्रैार सत्संगत की प्रीति देख कर अमरदास जी बड़े सन्तुष्ट हुए श्रैार प्रीतिपूर्वक उन्होंने रामदास जी को सदुपदेश दिया। गुरु अमरदास जी की सरल ज्ञानपूर्ण बातों ने रामदास

---

* मूर्च्छा॥

जी के हृदय में जगह करली और ईश्वर के गुणानुवाद सुन कर वह ऐसे तृप्त हुए कि उन्हें घर बार सब भूल गया और तब से वह बराबर गुरु जी की सेवा में रहने लगे और महात्मा अमरदास जी के अमृतरूपी ज्ञानवाक्यों से कानों को अमृत रस चखाने लगे। बड़ी भक्ति और आग्रह से वे गुरु की सेवा करते थे, इस कारण अमरदास जी उन्हें सबसे अधिक चाहने लगे। एक समय का वृत्तान्त है कि गुरु अमरदास जी ने अपनी लड़की का बिवाह करना विचार ब्राह्मण को बुला बर खोज लाने की आज्ञा दी। ब्राम्हण ने पूछा कि "बर कितना बड़ा हो"। इस पर अमरदास जी की धर्मपत्नी जो निकट ही बैठी हुई थी, सामने खड़े हुए रामदास की ओर उङ्गली उठा कर बोली कि "बस इतनाही बड़ा बर हो"। इन बातों को श्रवण कर अमरदास जी ने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि "बस काम हो गया, बर तो तुमने घर बैठे ही खोज लिया, अब बिचारे ब्राह्मण को कष्ट देने की क्या आवश्यकता है। जब एक बार तुमने इस लड़के को लक्ष कर बर खोज लाने के लिये कहा तो, बस, फिर यह हमारा दामाद हो चुका, हम निस्सन्देह इसीको अपनी कन्या ब्याहेंगे।" उनकी धर्मपत्नी ने भी पति के कथन का अनुमोदन किया और कुछ दिनों के बाद संवत १६१२ में जब रामदासजी की अवस्था लगभग इक्कीस वर्ष के थी, अमरदासजी ने अपनी गुणमयी कन्या भानीजी से रामदासजी का विबाह कर दिया और अत्यन्त स्नेह और प्रीति से दोनों को निकट ही रक्खा। दोनों पर अधिक स्नेह होने का कारण यह था कि रामदासजी और विशेष कर उनकी नवपत्नी भानीजी अमरदासजी की सेवा बड़े प्रेम से करती थीं। पाठको, इन आर्यललनाओं की तनिक पितृभक्ति की ओर ध्यान दीजिए। इस वृत्तान्त के पाठ करने से आप लोगों को भानीजी की पितृसेवा का हाल अच्छी तरह विदित हो जायगा।

पितृभक्त भानीजी नित्य चौकी पर बैठा कर अपने पिता गुरु अमरदासजी को अपने हाथों स्नान करवाया करती थीं। एक दिन का वृत्तान्त है कि गुरु अमरदासजी चौकी पर बिराजमान थे और उनकी गुणमयी पुत्री उन्हें स्नान करा रही थीं, ऐसे समय दैवसंयोग से कहीं चौकी का एक पावा टूट गया। यह देखते ही झट से भानीजी ने अपने पैर का पञ्जा पावे के स्थान पर दे कर पिता को गिरने से बचाया। यह घटना इतनी शीघ्र हुई कि अमरदासजी को इसका कुछ पता तक नहीं लगा, परन्तु टूटे हुए पावे की कील भानी जी के पैर में धस गई और पैर से खून बह निकला। पर जब तक पिता स्नान से निश्चिन्त न हो लिए तब तक दृढ़चित्ता पितृभक्ता भानी जी ने वहां से अपना पैर न हटाया। जब अमरदास जी स्नान कर चौकी से भूमि पर उतरे तो वहां रक्त की धारा देख कर वह चौंक उठे और जब उन्हें विदित हुआ कि मेरी स्नेहमयी पुत्री ने अपने पैर कट जाने की उत्कट पीड़ा सहन कर पितृभक्ति का उच्चतम नमूना दिखाया है, तो वह आल्हाद से गद्‌गद हो गए और कन्या को सामने बुला कर बोले "आज मैं तुझपर बड़ा प्रसन्न हुआ हूं, तू क्या चाहती है मुझ से कह; मैं यथासाध्य तेरी इच्छापूर्ण करने की चेष्टा करूंगा। भानीजी ने मुख नीचे कर बड़े नम्रस्वर से केवल इतना ही कहा कि "पिता, गुरु की गद्दी मेरे ही बंश में रहै"। अमर दास जी ने लाचार होकर पुत्री का बचन स्वीकार किया।

अमरदास जी ने विचारा कि गद्दी देने के पूर्व एक बार रामदास की भी परीक्षा लेनी चाहिए। यह विचार कर उन्होंने अपने सब शिष्यों को इकट्ठा कर कहा कि "तुम लोग बाहर मैदान में एक चबूतरा बनाओ, हम उसी पर बैठ कर तुम लोगों को उपदेश दिया करेंगे। गुरु की आज्ञा के अनुसार शिष्यों ने चबूतरा बना कर तैयार किया, परन्तु अमरदास जी ने नापसन्द कर उसे गिरवा दिया। फिर अधिक ध्यान के साथ शिष्यों ने बड़े परिश्रम

से चबूतरा बनाकर तैयार किया, अमरदास जी ने उसे भी नापसन्द कर गिरवा दिया। इसी प्रकार कई बार शिष्यों ने यथासाध्य परिश्रम कर चबूतरा बनाया और अमरदासजी ने गिरवा दिया। अन्त को गुरु को पागल समझ सब लोग चबूतरा बनाना छोड़ बैठे; परन्तु गुरुभक्त रामदास जी ने इस कार्य को नहीं छोड़ा, बड़े परिश्रम से वह बिचारे अकेले ही इसमें लगे रहते। पर जब उनका चबूतरा बन कर तैयार होता, तो वह भी गुरु की आज्ञा से गिरवा दिया जाता। परन्तु बार बार उद्यम बिफल होने पर भी रामदास जी निरास न हुए, वे और भी अधिक ध्यान और परिश्रम से चबूतरा बनाने लगे। अन्त को जब गुरु अमरदास जी ने देखा कि यह ऐसा दृढ़चित्त है कि धर्म्म के कठिन मार्ग से कभी विचलित न होगा, तब उससे चबूतरा बनवाना छोड़ दिया। एक तो कन्या की भक्ति ने उन्हें मुग्ध करही रक्खा था, दूसरे अब दामाद रामदास की गुरुभक्ति से भी वह ऐसे प्रसन्न हुए कि बिना कुछ आगा पीछा किए उन्होंने चट रामदास जी को गद्दी देदी।

संवत १६२९ में अमरदास जी ने गुरु रामदास जी के हाथ से अमृतसर नगर की नेव डलवाई और उन्हींके नाम पर उस स्थान का नाम रामदास-पुर रक्खा।

गुरु अमरदास जी के परलोक सिधारने पर रामदास जी तन मन से अपने कर्तव्य का पालन करने लगे। जो मनुष्य उनके दर्शनों को आता, वह उनके अमृतरूपी उपदेशों से तृप्त हो जाता था। इनके उपदेशों से बहुत से लोग गुरु नानक के अनुगामी हो गए और सिख धर्म्म की अच्छी उन्नति हुई। इनके समय तक गुरु नानक जी का चलाया हुआ फकीरी लिबास तथा गुरुआई का सब रंग ढंग जैसे का तैसा कायम था। यह कभी भी किसी से कुछ मांगते न थे और यदि कोई प्रसन्नता से कुछ दे जाता तो इँकार भी नहीं करते थे।

संवत १६३३ में लाहोर जाते समय शाहंशाह अकबर इनके दर्शनों को आया और उसने इन्हें कई ग्रामों का माफ़ी पट्टा लिख दिया। इन ग्रामों की अधिकांश आमदनी फकीरों और अतिथियों में खर्च होती थी।

संवत १६३४ में रामदास जी ने अपने शिष्यों को इकट्ठा कर अमृतसर तालाब खुदवाना आरम्भ किया, जो उक्त नगर में अब तक वर्तमान है; और इस तालाब के विषय में अनेक मनगढ़त कहानियां भी सुनाई देती हैं और किसी किसी का यह वर्णन है कि इसी स्थान पर अश्वमेध यज्ञ करते समय श्रीरामचन्द्र जी और उनके पुत्र लव कुश में युद्ध हुआ था और इसी युद्ध में रामचन्द्र जी हार कर मूर्छित हो समर भूमि में गिर पड़े*। भानीजी ऐसी धर्मपत्नी पाकर बड़े सुख से रामदास जी का दिन बीतता था। पतिपत्नी में अगाध प्रेम था। समय पाकर इस धर्मपत्नी के गर्भसे रामदास जी के तीन पुत्र भी हुए। इन तीनों का नाम पृथिवीचन्द, महादेव और अर्जुन था। इसी प्रकार से रामदास जी अपना कर्तव्य का उत्तमता पूर्वक साधना कर रहे थे कि एकाएकी उन्हें काल ने आघेरा। संवत १६३८, सावन बदी ३, को केवल ४९ वर्ष की आयु में हमारे चरित्रनायक अपने परिवार और शिष्यमण्डली को शोकसागर में डुबोकर स्वर्ग को सिधार गए।

वेणीप्रसाद।

महाराष्ट्र जाति का अभ्युदय

माधवराव ने महाराष्ट्रों में फिर से नव-जीवन का सञ्चार कर दिया था। पानीपत की लड़ाई में, यह समझ कि अब मरट्ठे हो जाते हैं, उन्होंने अपने भुजबल से थोड़े ही दिनों में उन्हें दबा दिया। नागपुर के भोंसलों ने इसी बीच में एक भीतरी झगड़े का बीज बोना

* इस तालाब का विशेष वर्णन और चित्रादि आगे चलकर दिया जायगा। सम्पादक

चाहा था पर माधवराव की चतुराई से फिर से मरहटों में एका हो गया था। दक्षिणी देशों में दूरदर्शी हैदरअली, निजामअली, आरकट के नवाब और कुटिल नीतिकुशल अंगरेज़ों को महाराष्ट्रशक्ति के आगे गर्दन झुकानी पड़ी थी। मध्यभारत और राजपुताना के राजा महाराजागण भी महाराष्ट्र के बिक्रम से पेशवाओं को कर देने लगे। जाटों ने भी पराभव स्वीकार कर लिया था। इतना ही नहीं, ई० १७७० में द्वार पर मरहटों के सिंहनाद का शब्द सुन पड़ने लगा। पानीपत की हार के बाद ही मरहट्ठे चर्म्मन्वती (चम्बल) नदी पार हो सकेंगे यह स्वप्न में भी रोहिलों को गुमान न था। शक्तिवान सिख अफ़गानों को दमन करने में प्रवृत्त होते देख रोहिले दिल्ली, आगरा, गंगा और यमुना के अन्तर्वेद में अपनी प्रभुताई जमाने की चेष्टा करने लगे। उन लोगों का जी यहां तक बढ़ गया था कि दिल्ली के बादशाह शाहआलम को वृत्ति रहित कर उनकी बेगमों को भी अवमानित करने लगे। इधर बादशाह अंगरेज़ों से युद्ध में परास्त हो दिल्ली छोड़ प्रयाग में रहने लगे। मरहठों ने रोहिलों को जीत मुग़ल बंश के शाहआलम को दिल्ली के तख़्त पर बैठा दिया। ई० १७७१ सन के २५ वीं दिसम्बर को बड़ी धूमधाम से मरहटों की सहायता से बादशाह का राज्याभिषेक हुआ। रोहिलों की उद्दण्डता से दिल्लीवालों के नाकों दम हो गया था। वे लोग अपने सच्चे बादशाह को राजगद्दी पर बैठे देख जी से प्रसन्न हुए। उत्तरभारत में महाराष्ट्रों का पहिला सा प्रताप बढ़ गया था।

इसके उपरान्त मरहटे मुसलमानों के हाथ से अयोध्या, काशी और प्रयाग के उद्धारसाधन में प्रवृत्त हुए। इसी बीच में दक्षिण से पेशवा माधवराव की बीमारी की खबर आई। मरहटों के दुर्भाग्य से २८ बर्ष की उमर में माधवराव को यक्ष्मारोग होगया। उनके प्रधान सेनापति उत्तरभारतवर्ष के देशों में अपनी प्रभुता जमा रहे थे। यह देखसुन हैदरअली उपद्रव करने लगा। इसलिये माधवराव को अपने सेनापतियों को राजधानी में लौटने के लिये लिखना पड़ा। वे राजधानी में लौट भी न आने पाए थे कि उधर माधवराव को यमदूतों ने ले जाने की जल्दी कर दी। उसीके साथ ही साथ मरहठों की सब लालसा जी ही में रह गई। एकछत्र हिन्दू साम्राज्य स्थापन का मौका सदा के लिये समाप्त हो गया। उधर अंगरेज़ मौका पाकर अपनी अमलदारी फैलाने लगे। जो अकाल में माधवराव न मर जाते तो कदाच मरहठों की शक्ति घटती या नहीं इसमें सन्देह है।

सन १७७२ ई० में माधवराव के छोटे भाई नारायणराव १६ वर्ष की उमर में राजगद्दी पर बैठे। दादा साहब (रघुनाथ राव) उनके नाम पर राज काज करने लगे। आनन्दी बाई की कुमन्त्रणा से उनकी बुद्धि भी बहक गई। उस पापिनी के बहकाने में पड़ सन १७७३ ई० के भादों के महीने में नारायण राव बुरी तरह से मारे गए। फिर पूना में घरेऊ झगड़ा फैला। सुचतुर अङ्गरेज़ मौका पा पहिली लिखी हुई सन्धि की शर्तों को तोड़ अपना मतलब गांठने लगे। नारायणराव के उसी समय जन्मे हुए लड़के को छोड़ दुराचारी रघुनाथ राव को अंगरेज़ों ने सिंहासन पर बैठा दिया। जब नारायण राव के मरने पर पूना में बखेड़ा उठा उसी समय उन लोगों ने महाराष्ट्रों का एक बन्दरगाह अन्यायपूर्वक छीन लिया था। अब तक उनके साथ मरहठे अच्छा ही बर्ताव करते आए, परन्तु इस समय अङ्गरेज़ों के जी में राज्यलाभ की लालसा ऐसी बढ़ गई थी कि वे लोग स्वार्थसिद्धि के लिये पूना के दरबार में रिशवत देना, आपस में फूट फैलाना, लड़ाई लगाना, राजपुरुषों में परस्पर बैर बढ़ाना, इत्यादि खोटी बातों में प्रवृत्त हो गए। रघुनाथ के सिंहासन पर बैठने पर मरहठों के बीच भांति भांति के उपद्रव होने लगे, जिसे देख सुन उन्हें बड़ा हर्ष होने लगा। उनके भतीजे को मारनेवाले रघुनाथ की सहायता में प्रवृत्त होगए, इसीसे मरहठों से उनकी लड़ाई होने लगी। यह युद्ध छ वर्ष

तक बनारहा। इस बेर की भांति अन्याय युद्ध में अंगरेज़ कभी नहीं लिप्त हुए थे। एक यही क्या, सम्भव है कि कोई भी सभ्य जाति ऐसे अन्याय और अधर्म युद्ध में कभी लिप्त न हुई होगी।

उस समय पूना में मरहठों का कोई सिर धरू न था। मन्त्रियों के बीच फूट और स्वार्थ साधन की कुइच्छा बढ़ रही थी, राजभण्डार खाली पड़ा था और पूनाराज्य का बाल बाल ऋण में गुँथ गया था। उसी समय में एक और भी बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। पानीपत की लड़ाई में भाऊ साहब के मरने पर भी उनकी लाश न मिली, इससे बहुतेरे लोगों ने समझा कि उन्होंने युद्ध के मैदान से छिप कर अपनी जान बचाई होगी। यह सुन बाजीगोबिन्द नाम का कोई मनुष्य एकाएक अपने के। भाऊसाहब कह महाराष्ट्र सिंहासन पर आपही बैठने की इच्छा करने लगा। कहते हैं कि अङ्गरेज़ भी उसीकी सहायता पर खड़े हो गए, पर थोड़े ही दिनों के बाद वह धोखेबाज़ पकड़ा गया। उसके विचार के लिये पूना दरबार से एक पंचायत बैठी। पंचों ने बाजीगोबिन्द के प्रवञ्चक स्थिर किया। सब लोगों के सामने भाऊ साहब की स्त्री ने उसे प्रवञ्चक कहा। तब उसकी गर्दन मारी गई। इस घटना के समाप्त होते न होते कोल्हापुरपति पेशवा के राज्य में उपद्रव आरम्भ हुआ। जो हो, ऐसे खोटे दिनों में महाराष्ट्र राजमंत्री नाना फड़नबीस के सलाह की चतुराई से और महाराष्ट्रों के लगातार उद्योग करने पर कई बार अङ्गरेज़ हार गए। उन लोगों ने दो बार क्षमा मांगी। मरहठों ने दो बार सन्धि की। तौभी अङ्गरेज़ कम्पनी की उद्दण्डता न गई। उन्होंने विलायत और कलकत्ते के हाकिमों की आज्ञाधीनता के मिस उन सन्धियों के। भी तोड़ दिया। इसीसे फिर लड़ाई प्रारम्भ हो गई। इधर हैदरअली और दूसरे रजवाड़े महाराष्ट्र देश में लूट करने लगे। उस समय भाग्यवश बिद्रोही हो अङ्गरेज़ रक्षित रघुनाथ के पक्ष पर हो गए। औरंगज़ेब के मरने के उपरान्त मरहठों को ऐसी अवस्था कभी नहीं हुई थी। पर नाना फड़नबीस के नीतिकौशल से शीघ्र ही यह दुर्दिन मिट गया। अङ्गरेज़ों ने महाराष्ट्रों से लड़ बड़े ही जर्जरित होकर हार मानली। उन लोगों का दर्पचूर्ण हो गया। रघुनाथराव और आनन्दीबाई कैद होकर दिन बिताने लगे।

नारायणराव के अल्पवयस्क पुत्र सवाई माधवराव (माधवराव नारायण) को राजा बना नाना फड़नबीस ने महाराष्ट्रवासियों को सुशासन से सुखी किया था। निजाम और टीपू सुलतान ने भी मरहटों की प्रधानता स्वीकार करली थी। महादजी सिन्धे ने उत्तरभारत में जाकर गुलाम कादिर के पैशाचिक अत्याचार से दिल्लीश्वर और उनके महलों की रक्षा कर उस देश के मुसलमानों को दबा बादशाह को आधीनी स्वीकार करवा दी। बादशाह ने उन्हें सन १७८९ ई० में "आलीजाह बहादुर" की पदवी दी और उनके राज भर में गो हत्या न होने की सनद दी। राजपूताने में भी मरहठों की अमलदारी हो गई थी। काशी, प्रयाग और अयोध्या के उद्धार की एक बेर चेष्टा हुई थी, पर वह सफल न हुई। जो हो, इसके पहिले मरहठों की ऐसी उन्नति कभी नहीं हुई थी। पेशवा माधवराव की अवस्था थोड़ी होने पर भी महाराष्ट्र मण्डली के जितने सरदार थे, सब उनकी आज्ञा मानते थे। उत्तर में शतद्रु से दक्षिण में तुङ्गभद्रा तक इतना बड़ा राज्य शत्रु-विहीन हो रहा था। प्रातःस्मरणीया महाराणी अहिल्या बाई के सुशासन में मालवा की प्रजा जैसी सुखी थी, बरार, नागपुर, गुजरात, महाराष्ट्र, कङ्कन प्रभृति की प्रजासमूह उससे कम सुखी न थी।

दुर्भाग्यवश यह अवस्था बहुत दिनों तक न रही। दिनों के फेरफार के कारण भांति भांति की प्रतिकूल घटनाओं से महाराष्ट्रियों के भाग्यभानु धीरे धीरे अस्ताचल की ओर जाने लगे। सन १७९४ ई० से १८०० के बीच महादजी

सेंधिया आदि गिने गिने मुखिया और नानाफड़-नवीस प्रभृति राजनीतिज्ञ जन एक एक कर संसार से उठ गए। पेशवा सवाई माधवराव की भी २१ वर्ष की उमर में (१७९५ ई०) मृत्यु हुई। योंही थोड़े ही दिनों के बीच राजनीतिधुरन्धर विचक्षण जन और रणबांकुरे सामन्तों के अभाव से महाराष्ट्रसमाज निर्बल हो गया। बहुतेरे स्थानों में "अबला यत्र प्रवला बालो राजा निरक्षरो मन्त्री" हो जाते हैं। बस सचतुर पतवारी के बिना मरहठों की राष्ट्र नौका कालसागर के अथाह जल में मररा कर बैठ गई।

ऐसे समय में अत्यन्त तरुण वय के बाजीराव महाराष्ट्र सिंहासन पर बैठे। यह रघुनाथराव और आनन्दीबाई के पुत्र थे। पिता माता के अवगुणों की मानो पोटलीरूप से यह जन्मे थे। इन्हींके प्रताप से राजसभा में कपटाचार दुर्बलता, वारुणी और बारविलासिनी का प्रवेश हुआ। सूरता, साधुता, स्वदेशप्रीति धीरे धीरे विलीन हो गई। सामरिक खर्च को घटा विलास का खर्च बढ़ाया गया। चुगलखोरों की बातों में आ राजनीतिकुशल लोगों की गर्दन ली गई और लम्पट तथा लोभियों की बातों में फंस प्रजा भी मनमानी लूटी गई। उनके ऐसा कादर, लम्पट और कुव्यसनी उस वंश में कोई नहीं जन्मा था। अङ्गरेज़ों की कुटिल नीति समझने की उन्हें बुद्धि न थी। बड़ों की दी हुई जागीरें सामन्तों से छीनने के लिये उन्होंने अङ्गरेज़ों की मदद ली। ऐसों के हाथ में राज्य रहना क्या कभी सम्भव है? जशवन्तराव हुलकर ने एक बेर अङ्गरेज़ों को परास्त कर मरहठों का बल विक्रम जग को दिखा दिया था। उनके मरने बाद उनका राज लड़कों का खिलवाड़ हो गया था। तरुण वयस के सेंधिया दिन रात महलों में बिताने लगे। नागपुर के भोंसले घरेऊ झगड़े में उलझ गए। जगत में जहां जहां राज-कुल का ध्वंस हुआ है वह प्रायः इसी प्रकार से हुआ है।

१६४६ ईसवी में महात्मा शिवाजी ने जिस राज्य को स्थापन किया था, उसे १८१८ ईसवी में नराधम बाजीराव ने खो कर वह अङ्गरेज़ों से सालीना साठ लाख रुपए ले ब्रम्हावर्त में आ परमार्थसाधन करने लगा, पर उसका परमार्थ कहां तक सधा होगा यह तो ईश्वर ही जानता है।

परमार्थसाधन के सम्बन्ध में रामदास स्वामी के उपदेशों से विच्युत हो मरहठे मुह के बल गिरे। पवित्र महाराष्ट्र धर्म से विमुख होना ही उनके राज्यनष्ट का मुख्य कारण हुआ। सदाचार, निस्पृहा, कर्तव्यनिष्ठा और परोपकार करने की इच्छा प्रभृति सात्विक नीति ही रामदासप्रणीत महाराष्ट्रधर्म्म की बुनियाद थी, यह बात राज्य बढ़ाने के साथ ही साथ मरहठों के जी से भूलने लगी। रामदास स्वामी राज बढ़ाने के पक्षपाती होने पर भी परमार्थ साधन से अलग न थे। इसीसे यह कार्य गीता में कहे हुए कर्म्मयोग की नाई बहुत ही कष्टसाध्य था। किसी धर्म्म में भी इतने दिनों तक कठोर धर्म्म की पालना नहीं हुई थी। कुछ दिनों के उपरान्त मरहठे भी इस धर्म्म से दूर जा पड़े थे। निष्काम धर्म्मनिष्ठा की कमी होने पर "महाराष्ट्रीय धर्म्म" (महाराष्ट्र के उपयोगी सत्वगुणप्रधान हिन्दू धर्म्म और महाराष्ट्रों का पालनीय धर्म्म) यह गौरवकारी पवित्र नाम भी महाराष्ट्र साहित्य से लोप हो गया था और जिसमें अनेक कर्मकाण्ड हैं ऐसे हिन्दूधर्म्म ने उसके स्थान पर अधिकार कर लिया था। चित्तशुद्धि की अपेक्षा सोपचार पूजार्चना अधिक पुण्यजनक माना जाने लगा। ऐसी अवस्था में समाज में ईर्षा, विद्वेष, कपटता और स्वार्थ धन की इच्छा का होना ठीक ही है। निष्काम धर्म्म का बन्धन ढीला पड़ने पर महाराष्ट्र समाज में ये सब दोष जा घुसे थे। मल्हारराव हुलकर की अवैध स्वार्थपरता से पानीपत में मरहठों का भाग्य उलट पुलट हो गया था। रोहिलों के दमन करने में हुलकर ही मरहठों के बाधक हुए थे।

अङ्गरेज़ों से लड़ते समय भी उन्होंने ही स्वार्थ के अनुरोध से पापिष्ट रघुनाथ की ग्रोर अंगरेज़ कम्पनी की सहायता की थी। नागपुर के भोंसलों के खोटे बर्ताव से महाराष्ट्र समाज की बहुत कुछ हानि हुई थी। नारायणराव की हत्या के लिये ग्रानन्दी बाई की अपेक्षा नागपुर के भोंसलों ने कुछ कम खोटाई नहीं की थी। उन लोगों की स्वार्थपरता ग्रोर क्रूरता के लिये मरहटों को थोड़ी विपद् नहीं झेलनी पड़ी थी। उन्हीं लोगों ने मरहठों को बङ्गाले में बदनाम किया था। पहिले महाराष्ट्रयुद्ध में यही लोग अंगरेज़ों से रिशवत लेकर अपने देश को बुराई करने में प्रवृत्त हुए थे। बहुत दिनों तक सेन्धियाओं ने विश्वास के साथ काम किया था। पीछे से उन्होंने भी कुछ स्वार्थी हो देश की अधिक खराबी की थी। स्वयम् पेशवा ही सब ठौर निष्काम कर्तव्यनिष्ठ नहीं हो सके। असल में सात्विक महाराष्ट्र धर्म्म को भूली हुई महाराष्ट्रसमाज अन्तःसार शून्य हो गई थी। तो भी हिन्दूराज्य स्थापन पूर्वक हिन्दूधर्म्म को निष्कण्टक करने की पवित्र वासना के कारण वह बहुत दिनों तक बढ़ी चढ़ी अवस्था में थी। भारत में किसीके हृदय में ऐसा भाव न होने के कारण ग्रोर किसी जाति या समाज की इतनी बढ़ती नहीं हुई थी। ऐसी ऊंची ग्राशा से हृदय को पूर्ण किए बिना बार बार ऐसे कड़े झपेटों को सहकर भी अनेक दिनों तक वे अपना प्रताप बनाए रहे थे।

महाराष्ट्रों के उदय ग्रोर अस्त का यह संक्षिप्त इतिहास है। जिन्हें केवल दूसरों के दोष ही दिखाई देते हैं वे तो इसे अराजकता का इतिहास कहेंगे। उनके लिये हमलोग गुणग्राही सज्जन सलिवन का लिखा हुआ थोड़ा सा उदाहरण यहां उद्धृत किए देते हैं।

"Pray do not give the enemy an advantage by speaking in unqualified terms of the bad Government of our predecessors. Considering the incessant wars and revolutions in which they had been engaged for a full century after the Moghul Empire broke up, it is quite a wonder that there was any Government at all. Yet in the midst of incessant fighting the civil institutions were undisturbed and almost everywhere the country was flourishing. Since our last good piece of work when we put down the Pindari ravages in 1818, we have held India with such an iron grasp that hardly a shot has been fired in our territory. But what have we made of this interval? The Government is more in debt and I doubt if the people are so rich. Pray draw largely on your biographical stores as you go on. Give us Nana Furnavis and such like. What poor pigmies we are as Indian administrators, when compared with natives of that stamp!"

कलकत्ते के प्रसिद्ध महाराष्ट्र ऐतिहासिक श्रीयुत बाबू सखाराम गणेश देउस्कर महाशय ने कलकत्ते के प्रसिद्ध बङ्गला मासिकपत्र "साहित्य" में इस लेख को लिखा था। उन्हींकी कृपापूरित ग्राज्ञा से मैंने सरस्वती के पाठकों के लिये यह लेख अनुवादित किया है। इस उदारता के लिये मैं हृदय से उक्त बाबू साहब को धन्यवाद देता हूं ग्रोर ग्राशा करता हूं कि वे महाराष्ट्रजाति के इतिहास या साहित्य के विषय में उक्त मासिकपत्र में जो जो लेख लिखे हैं उनके उलथा के लिये भी ग्राज्ञा देंगे।

कार्तिकप्रसाद।

विद्यावल्लभ की विद्वत्ता

हमने अनेक कवि देखे हैं; अनेक उपन्यासकार देखे हैं; अनेक सम्पादक देखे हैं; परन्तु विद्यावल्लभ चतुर्वेदी उन सबसे विलक्षण; उनका विद्या-विलास अति प्रकाण्ड; उनका लेखन-कैाशल महा-ग्राश्चर्य मय! खेद इस बात का है कि वेद चार ही हैं; यदि ग्राठ होते तो चतुर्वेदी के स्थान में अष्टवेदी की पदवी विद्यावल्लभ जी के समाग[illegible] से कृतार्थ हो जाती! उनकी प्रियतमा का नाम पिता के घर चाहै जो रहा हो, जबसे उसके कमल-विनिन्दित-कर को विद्यावल्लभ ने अपने करतल का

सहारा दिया, तब से उसका नाम हुआ सरस्वती। यह नाम यथार्थ भी हुआ, क्योंकि एक प्रतिष्ठित पाठशाला में कई महीने शिक्षा और दीक्षा पाकर सरस्वती बहुत कुछ स-रस-वती हो चुकी थी। सरस्वती के संगम से विद्यावल्लभ की विद्या को और भी अधिक उत्तेजना मिली; अभ्यास करते करते और लेखनी से अनवरत काम लेते लेते उनको दृष्टि क्षीण होगई; पीठ पुल हो गई; और कभी कभी उन्हें त्रिभुज होने की भी आवश्यकता होने लगी। विद्यावल्लभ के कण्ठ को, भीतर बाहर सब कहीं, सरस्वती ने घेर लिया; इसलिये उनकी विद्वत्ता के विषय में विशेष कहने की कोई आवश्तकता नहीं; परन्तु आवश्यकता इस बात के कहने की है कि विद्यावल्लभ जी बहुत नहीं, कुछ थोड़े, सलज्ज-स्वभाव के थे; सङ्कोच उनको सताता था। इसी कारण, वे बहुधा अपने गृह-दुर्ग से बाहर न निकलते थे; इसी कारण, लौकिक बातों का ज्ञान भी उनको किञ्चित कम था; और, इसी कारण, बहुधा कम बोलना ही उनको अच्छा लगता था।

लोगों के सौभाग्य से यदि विद्यावल्लभ जी कभी बाहर निकलते, अथवा किसी सभा में पदार्पण करते, तो सहसा सबकी आंखों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते। सब कोई उनको एक अनोखा जीव समझते। परन्तु इसमें हम उन लोगों को दोष भी नहीं दे सकते! कल्पना कीजिए कि विद्यावल्लभ जी से मिल कर किसी प्रतिष्ठित पुरुष ने प्रेम-पूर्वक यह कहा कि, "हम आपसे मिल कर अत्यन्त आनन्दित हुए। आपके सदृश विद्वानों का दर्शन बड़े पुण्य से होता है"। विद्यावल्लभ जी यदि उस बात का उत्तर न देकर अधोमुख हुए चुप बैठे रहें, तो उनके इस व्यवहार से क्या ध्वनि निकलैगी? यही, कि, "हमसे मिल कर आपका अत्यन्त आनन्दित होना भी संभव है; और बिना पुण्य के हमारा दर्शन न मिलना भी संभव है; परन्तु सोच हम यह रहे हैं कि, किस प्रकार हम मिथ्या कहें कि हमको भी आपसे मिलकर सातिशय आनन्द हुआ और पूर्वजन्म के पुण्यप्रभाव ही से हमको आपका दर्शन मिला"। फिर कहिए विद्यावल्लभ जी में अनोखेपन का आरोप करनेवालों को कोई कैसे दोष दे सकता है! अच्छा एक और उदाहरण लीजिए। कल्पना कीजिए कि राजा कुमुदानन्द वर्म्म बहादुरने विद्यावल्लभ जी की नायिका-नवरत्न नामक नवीन पुस्तक पर लुब्ध होकर उनको पुरस्कार देने के लिये बुलाया और एक मत्त-गजेन्द्र के गले में मुक्तामाला पहना कर, पीठ पर दुशाले बिछा कर और ऊपर से सोने की सन्दूक़ में कई मन रत्न लाद कर उसे विद्यावल्लभ जी को दान किया और विदा होते समय कहा, "आपने अपनी पुस्तक में जो प्रचण्ड पाण्डित्य प्रकट किया है उसके उपलक्ष में जो कुछ मैंने दिया उसका स्मरण करते ही मुझे लज्जा आती है। कहां आपकी त्रैलोक्य-विदित विद्वत्ता और कहां मेरा तुच्छ दान! सच तो यह है कि भगवती वाग्देवी पद्मासन छोड़कर इस समय आपही के कण्ठदेश में विराज रही हैं! आप धन्य हैं!" यह सब सुनकर विद्यावल्लभ जी चुप! जैसे वर्म्म बहादुर की बात का उत्तर ही न हो सकता हो!! जैसे जो कुछ विद्यावल्लभ जी से कहा गया सब अक्षरशः सत्य हो!!! इसी से कहते हैं कि हमारे चतुर्वेदी जी को यदि कोई विलक्षण जीव मानै तो उसका दोष ही क्या?

विद्यावल्लभ जी अपने मौनावलम्बन का कारण अपनी गृहिणी से यह बतलाते थे। वे कहते थे कि अपनी निन्दा और औरों की प्रशंसा उनके सामने करके मनुष्य उस कथन का प्रतिवाद कराने की इच्छा रखते हैं। अर्थात् अपनी निन्दा के मिष वे औरों से अपनी प्रशंसा कराना चाहते हैं और दूसरों की प्रशंसा करके उनके मुख से उनकी निन्दा सुनना चाहते हैं। इस प्रतारणा का कहीं ठिकाना है? यह धोखेबाज़ी क्या ऐसी वैसी है? यही समझ कर विद्यावल्लभ जी मौनरूपी भूषण को बड़ी दृढ़ता से ग्रहण करके अपने को धूष

माननेवाले आत्मनिन्दक और पर-प्रशंसक लोगों का मनोरथ विफल कर देते थे।

विद्यावल्लभ जी बाहर तो बहुत कम बोलते; परन्तु घर में सरस्वती के साथ शास्त्रार्थ में, उस बिचारी के धुर्रें उड़ा देने में कोई कसर नहीं करते थे। बात बात में उपमा; बात बात में दृष्टान्त; बात बात में प्रमाण! यहां तक कि दो ही चार मिनट में उस बिचारी को कहना पड़ता, "अच्छा अच्छा, मैं हारी; मुझे और काम है; अब मैं जाती हूँ।" कहिए ऐसे और कितने पति हैं जिन्हें वाग्युद्ध में अपनी पत्नी को परास्त करने और उसीके मुख से पराजय स्वीकार कराने का सैाभाग्य प्राप्त होता है? कहिए, कहिए, और कितने पतियों को यह शक्ति ईश्वर ने दी है?

सरस्वती को यह दृढ़ विश्वास था कि विद्या, बुद्धि और वक्तृता में उसके पति की समता करने वाला कोई नहीं। विद्यावल्लभ के अगाध पाण्डित्य का मन ही मन चिन्तन करके वह पुलकित हुआ करती। कभी कभी वह अपना विचार अपने पति के सम्मुख मुसकुरा कर प्रकाशित करने में भी कुण्ठित न होती। सरस्वती की बात सुनकर विद्या-वल्लभ जी हँसते हँसते कहते—"एक ही तो तुम्हारे पति है; फिर तुम उसकी समता और किससे कर सकती?" यह सुनकर भैाहों को कमान बनाती हुई और कटाक्षवाणों से विद्यावल्लभ को बेधती हुई वह वहां से चल देती।

सरस्वती को जहां सब सुख थे, तहां एक दुःख भी था। वह यह कि, उसके स्वामी की विद्या का विकास बाहर न होता था। विद्यावल्लभ जो कुछ लिखते थे उसे वे छपाते न थे। सरस्वती के लिये क्या यह सामान्य दुःख था? वह सरस्वती है न! कभी कभी विद्यावल्लभ के लेख वह स्वयं पढ़ती; परन्तु बहुधा पति के घर ही पर रहने के कारण उसे अपने नेत्रों से विशेष काम लेने की आवश्यकता न पड़ती; विद्यावल्लभ ही अपने लेख उसे सुनाया करते। जितना ही अधिक वह उन लेखों को न समझती, उतना ही अधिक उसे आश्चर्य्य होता; उतना ही अधिक वह स्वामी के पाण्डित्य की प्रशंसा करती; और उतना ही अधिक उसे खेद भी होता। ऐसी विशाल विद्वत्ता से भरे हुए लेख बिना छपे पड़े रहें! सरस्वती सूर्य पुराण पढ़ी थी; रामयण पढ़ी थी और सुख-सागर भी पढ़ी थी! परन्तु ये सब पुस्तकें बिना प्रयास सहज ही उसकी समझ में आजातीं; उसी-को समझ में क्या, जिनको अक्षर का भी ज्ञान नहीं, वे भी सुन कर समझ लेते; परन्तु अपनी पुस्तकों को आदि से लेकर अन्त तक महादुर्बोध और महा दुरूह बनाने की शक्ति स्वामी को छोड़ कर और किसी में सरस्वती ने न देखी! सरस्वती मन ही मन यह कहती, कि जिस समय ये सब पुस्तकें छपकर प्रकाशित होंगीं और बड़े बड़े सम्पादकों और ग्रन्थकारों को इनका एक अक्षर भी न समझ पड़ेगा, उस समय लोग विस्मित, चकित और अवाक् हो जावैंगे। इसी लिये स्वामी से वह सहस्र बार प्रार्थनापूर्वक कहती-"ये सब छपावो! ये सब छपावो!" परन्तु स्वामी कोई साधारण व्यक्ति नहीं! गहन पण्डित!! वह कहते कि पुस्तकों को छपाकर प्रकाशित करने के विषय में भगवान् मनु आज्ञा दे गए हैं—

'प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला'।

अर्थात् पुस्तकें छपाना मनुष्यों का स्वभाव ही है; परन्तु न छपाने ही से महा फल होता है। बस, यह सप्रमाण उत्तर देकर विद्यावल्लभ जी अपनी वल्लभा को निरुत्तर कर देते।

हमारे विद्यावल्लभ चतुर्वेदी के चार कन्यायें थीं। कन्यायें नहीं, उन के चारों वेदों की अधिष्टात्री देवियां कहनी चाहिए। इन कन्याओं को देखकर सरस्वती का चित्त सविशेष सन्तप्त होता; वह मन ही मन कहती कि, "यह मेरा ही अपराध है। मैंने गर्भ धारण किया; अतएव, यह मेरी ही अक्षमता का चिन्ह है! ऐसे प्रतिभाशाली, ऐसे प्रकाण्ड पण्डित, ऐसे उद्दण्ड लेखक को ऐसी अयोग्य स्त्री! जो स्वामी

बात की बात मे ऐसे ऐसे दुरूह ग्रन्थों की रचना कर सकता है, उसकी गृहिणी के गर्भ में कन्या छोड़ दूसरी सन्तति नहीं! स्त्री के पक्ष में इससे अधिक लज्जा की बात और क्या हो सकती है? इससे अधिक अपटुता का परिचय भी और क्या हो सकता है?"

विद्यावल्लभ बहुत दिन तक सुख से कालयापन करते रहे। उनको कन्याएं भी चन्द्रकला के समान बढ़ती रहीं; यहां तक कि दो चार वर्ष में ज्येष्ठ कन्या पिता के कन्धे तक पहुँच गई। इस समय विद्यावल्लभ की निश्चिन्तता शिथिल हुई। जब उन्होंने सोचा कि एक का नहीं किन्तु क्रम क्रम से चार कन्याओं का विवाह करना होगा और प्रत्येक विवाह में कम से कम ५०० रुपए अवश्य ही लगेंगे, तब विद्यावल्लभ जी का कलेजा दहल उठा। स्वामी को इस प्रकार सचिन्त और व्यग्र देख कर सरस्वती उस मानसिक व्यथा का कारण समझ गई। सरस्वती ही ठहरी! उसने कहा "यदि तुम थोड़ा भी मन लगाओ तो सब कुछ हो जावै; किसी वस्तु की कमी न रहै।" विद्यावल्लभ कुछ व्यग्र हो कर बोले "सचमुच क्या सब कुछ हो सकता है? अच्छा बतलाओ तो क्या करना चाहिए"? सरस्वती ने निरुद्विग्न और निःसंशय भाव से उत्तर दिया "बतलाऊं क्या? बनारस जाओ; अपनी पुस्तकें छपवावो; सब कहीं तुम्हारा नाम हो; फिर देखें, रुपया स्वयमेव चल कर आता है या नहीं"! सरस्वती के ऐसे आश्वासन वाक्य सुन कर विद्यावल्लभ को बहुत कुछ धैर्य हुआ! उनको विश्वास हो गया कि सरस्वती का उपदेश स्वीकार करने से कन्यारूपी उग्र ऋण से वे सहज ही मुक्त हो सकेंगे।

विद्यावल्लभ कभी घर से बाहर नहीं हुए; इस लिये बनारस जाने का मुहूर्त जब निकट आया, तब बड़ा गड़बड़ उपस्थित हुआ। निरुपाय, निःसहाय और सयत्न-पालित स्वामी को अकेला विदेश भेजने में सरस्वती समर्थ न हुई। यदि वह अकेला भेजती तो स्वामी को कौन खिलाता पिलाता? कौन कपड़े लत्ते पहनाता? और कौन नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्यों का स्मरण कराकर संसार के सैकड़ों उपद्रवों से उसकी रक्षा करता? यदि वह स्वयं स्वामी के साथ जाना चाहती तो वह भी न हो सकता था। एक अपरिचित नगर में चार कन्याओं को लिए हुए स्त्री को साथ ले जाने में लोक-प्रवीण स्वामी को भय लगता था! सरस्वती का भाई बंबई के एक प्रसिद्ध छापेखाने में प्रूफशोधक था; यदि स्वामी को वह वहां भेजती तो सब प्रकार की सुकरता थी; परन्तु वहां न भेजने का एक कारण था। सरस्वती ने अपने भाई से, और जब वह पाठशाला में थी तब अपनी अध्यापिकासे भी, सुन रक्खा था कि बनारस की पुस्तकों की लोगों को बड़ी चाह रहती है; चाहै वे कौड़ी काम की न हों, परन्तु विज्ञापनों पर लुब्ध होकर मनुष्य उन्हें मँगाते अवश्य हैं। इसी लिये वहां के पुस्तक बेचनेवाले थोड़े ही काल में जगतसेठ हो जाते हैं और उनके तोंद कोल्हू के नितम्ब की तुलना करने लगते हैं। इन्हीं कारणों से अनेक असुविधाएं होने पर भी सरस्वती ने स्वामी को बनारस ही भेजना निश्चय किया। स्वयं साथ न जासकने के कारण सरस्वती ने गाँव के देवदत्त नामक एक विशेष चतुर मनुष्य को अपने पद पर नियुक्त किया और स्वामी के खाने पीने, पहनने ओढ़ने, लिखने पढ़ने, और सोने जागने के विषय में सहस्र उपदेश देकर और यह सिखलाकर कि कौन काम किस समय करना होगा, उसने उसे स्वामी के साथ बनारस भेज दिया। उधर स्वामी ने प्रस्थान किया; इधर सरस्वती पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिरी और निरर्गल अश्रुधारा बहाने लगी।

विद्यावल्लभ जी बनारस पहुंचे और बहुत ही सस्ता, बहुत ही उत्तम और बहुत ही शीघ्र काम करनेवाले "हरिहरप्रसाद" छापेखाने के स्वामी से मिले। छापेखाने के ढूंढने और उसके स्वामी

से मिलाप कराने में विद्यावल्लभ के चतुर साथी ने बड़ी सहायता की; यदि वह न होता तो ऐसा अच्छा छापाख़ाना ढूंढ निकालना विद्यावल्लभ के लिये नितान्त असम्भव था। थोड़े ही दिनों में विद्यावल्लभ जी ने "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया और "हरिहर प्रसाद" जी के प्रसाद के परिवर्तन में सरस्वती के वस्त्राभरण गिरवी रखकर जो द्रव्य मिला था वह प्रायः सभी चला गया। गया तो गया; परन्तु "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" छप तो गई! बेचने के लिये जितनी दुकानें थीं वहां, और समालोचना के लिये जितने छोटे बड़े समाचारपत्र इस देश में थे, उनके सम्पादकों के पास, "मीमांसा सूक्ति-मुक्तावली" भेजी गई। विद्यावल्लभ ने एक प्रति रजिस्टरी करके अपनी गृहिणी को भेज दी; डर था, कि कहीं डाकख़ानेवाले बीच ही में उसे न खा जावें; इस लिये रजिस्टरी की गई।

जिस समय "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" सरस्वती को मिली और उसके ऊपर उसने अपने स्वामी का नाम छपा हुआ देखा, उस समय उसे जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। उस दिन सरस्वती ने गांव की सारी स्त्रियों को मिष्टान्न खाने के लिये निमन्त्रण किया और जहां पर स्त्रियों के बैठने की योजना थी वहीं वह पुस्तक फेंक रक्खी। सब स्त्रियां आकर उच्चस्वर से कहने लगीं "अरे यह किताब यहां किसने डाल रक्खी है; इसे उठा कर ताक में रखदो"। यह सुन कर सरस्वती ने अपनी बड़ी बेटी माधवी से कहा "माधवी! बाबा की पुस्तक को इस प्रकार पड़ी देख क्यों नहीं उसे उठाती?" यह कह कर सरस्वती ने उसे उठा कर पास के ताक पर रख दिया; परन्तु थोड़ी देर में उस ताक से कुछ लेने के बहाने फिर उसने उसे नीचे गिरा दिया। ताक के नीचे ही माधवी बैठी थी; उसने पुस्तक उठा ली। इस पर फिर सरस्वती ने कहा "माधवी! लजाती क्यों है? पढ़ने को जी चाहता हो तो पढ़ती क्यों नहीं? तेरे बाबा ही की बनाई यह पुस्तक है न, फिर लाज किस बात की?" परन्तु माधवी की श्रद्धा उस पुस्तक पर किञ्चिन्मात्र भी न थी; इस लिये, वह बड़ी निर्दयता से उसके पन्ने इधर उधर उलटने लगी। यह देख सरस्वती ने निर्भत्सनापूर्वक उससे कहा "माधवी! बाबा की पुस्तक इस प्रकार नष्ट करने के लिये नहीं हैं; उठ, उसे सन्दूक में रख आ"। हम सत्य कहते हैं, यदि "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" में कुछ भी चेतना होती तो उस दिन की नोंच खसोट में अवश्यमेव उसका प्राणान्त परिच्छेद हो जाता।

एक एक समाचार पत्र में "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" की समालोचना निकलने लगी। सरस्वती ने जो कल्पना की थी वह प्रायः सत्य निकली। ग्रन्थ का एक अक्षर भी जिनकी समझ में नहीं आया, ऐसे बृहस्पति के भी प्रतिद्वन्द्वी अनेक सम्पादक सहसा विह्वल हो उठे। एक ही स्वर से सब कहने लगे "ऐसा सारवान् ग्रन्थ आज तक नहीं प्रकाशित हुआ! ऐसे 'भारत मुखोज्वलकारी' ग्रन्थकार को सहस्त्र सहस्त्र साधुवाद!! ऐसा क्षमताशाली लेखक इस देश में दूसरा नहीं!!!

जो समालोचक कामतन्त्र और कोख (?) शास्त्र को छोड़ कर अन्य पुस्तकों को छूते समय बिच्छू के डङ्क मारने की सी व्यथा अनुभव करते हैं, उन्होंने अत्यन्त उत्साह के साथ इस प्रकार आलोचना की, "करालिनी, कङ्कालिनी, मोहिनी, मायाविनी और कुमुदकान्ता इत्यादि घृणित उपन्यास और नाटकों के बदले बीच बीच में यदि इस ग्रन्थ के तुल्य दो एक ग्रन्थ निकलें तो हिन्दी साहित्य शीघ्रही उन्नति के ऊंचे आसन पर आसीन हो जावै"! जिस सम्पादक ने मीमांसा का कभी नाम तक नहीं सुना था, केवल उसीने यह लिखा कि "विद्यावल्लभ जी से सब कहीं हम सहमत नहीं हैं, तथापि मुख्य मुख्य बातों में हमारा भी वही मत है जो उनका है"। जो पुस्तक खोलकर

भूमिका पढ़ना भी घोर पाप समझते हैं, उन्होंने इतना ही लिख दिया कि, "काग़ज़ और छपाई उत्तम है; मूल्य मालूम नहीं; 'स्थानाभाव' से अधिक नहीं लिख सकते; पूरी समालोचना 'वारान्तर' में करेंगे"। किसी किसी महा सम्पादक ने (परन्तु ऐसे एक ही दो होंगे) छपाई की प्रशंसा और मूल्य की अधिकता सूचित करके 'शेषं अग्रे' लिख विद्यावल्लभ के ऋण से अपनी मुक्तता की।

देश भर में, जहां जहां पुस्तकालय और सरस्वती-भवन थे, अथवा न थे, उनके देश-भक्त मंत्रियों ने रुपए के बदले रुपए के चिन्ह से चिन्हित पत्र भेज भेज कर विद्यावल्लभ से मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली की भिक्षा मांगी। उन्होंने लिखा आपके इस 'चिन्ताशील' ग्रन्थ ने हिन्दो साहित्य का एक बहुत बड़ा अभाव दूर कर दिया। विद्यावल्लभ 'चिन्ताशील' का अर्थ तो न समझे; परन्तु उन्होंने परम पुलकित होकर गांठ का पैसा डाक महसूल में खर्च करके, प्रत्येक पुस्तकालय को मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली भेज दी।

इस प्रकार स्तुति-वाक्यों की वर्षा होते होते जिस समय विद्यावल्लभ का सर्वाङ्ग उत्फुल्ल हो उठा, उसी समय उनको सरस्वती का पत्र मिला। गृहिणी ने उसमें लिखा था कि पञ्चम सन्तान की सम्भावना बहुत ही निकट आ पहुंची है। यह सम्वाद सुन कर विद्यावल्लभ को शीघ्र ही घर लौट जाना आवश्यक हुआ। इस लिये चतुर रक्षक को साथ लेकर, धन संग्रह करने के अभिप्राय से, वे पुस्तक बेचनेवालों की दूकानों की ओर चले।

जिस दूकानवाले के पास विद्यावल्लभ गए, सभीने उन्हें सूखा उत्तर दिया। सबने एक वाक्य हो कर कहा कि उनकी एक भी पुस्तक नहीं बिकी। केवल एक ने कहा कि, बाहर से किसीने "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" की एक प्रति वैल्यू पेएबल द्वारा मङ्गाई थी और वह उसे भेजी भी गई थी; परन्तु मङ्गानेवाले ने पैकेट लिया हो नहीं; अतः वह लौट आया और डाकमहसूल तथा मनीआर्डर-कमीशन दूकानवाले को उलटा घर से देना पड़ा। इसलिये क्रोध में आकर, उस पुस्तक बेचनेवाले ने विद्यावल्लभ को सारी पुस्तकें लौटा दीं। उसकी देखा देखी और दूकानवालों ने भी उसीका अनुकरण किया। ग्रन्थकार ने निरुपाय होकर बाज़ार से लौट आने पर इस विषय में बहुत कुछ विचार किया; परन्तु कुछ भी उनकी समझ में न आया। जिस ग्रन्थ की प्रसंशा से आकाश और पाताल एक होगया, उस की यह दशा! अपने 'चिन्ताशील' और 'सारवान' ग्रन्थ के विषय में जितनी ही उन्होंने चिन्ता की, उतनी ही अधिक उद्विग्नता उनको होने लगी। अन्त में जो दो तीन रुपए पास अवशिष्ट थे, उन्हींको लेकर सरस्वती के भोलानाथ स्वामी ने भोलानाथ की पुरी से गृहाभिमुख प्रस्थान किया।

घर आकर विद्यावल्लभ जी ने गृहिणी के सम्मुख बड़े आडम्बर के साथ अपना हर्ष प्रकाशित किया। सरस्वती सहास्यमुख होकर शुभ सम्वाद सुनने की प्रतीक्षा करने लगी। पत्नी को परम प्रसन्न देख विद्यावल्लभ ने "पश्चिमोत्तर-समाचार" की एक प्रति उसके गोद में फेंक दी। उसे पढ़कर मनही मन सरस्वती ने सम्पादक के अक्षय धन पुत्र की कामना की और उसकी लेखनी के मुख को मानसिक अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य द्वारा सप्रेम पूजा की। "पश्चिमोत्तर-समाचार" के सम्पादक की लेखनी की इस प्रकार मानसिक पूजा समाप्त करके सरस्वती ने फिर स्वामी के मुख की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखा। तब स्वामी ने "संसार जीवन" लाकर सामने रख दिया। उसे पढ़कर आनन्द से विह्वल हुई सरस्वती ने आशा-पूर्ण नयनों से और भी स्वामी की ओर अवलोकन किया। तब विद्यावल्लभ ने 'जगन्मित्र' का एक अङ्क झोले से बाहर निकाला। उसके अनन्तर? उसके अनन्तर "रुचिर-दर्शन"। उसके अनन्तर? उसके अनन्तर "साहित्य-सेवक"। उसके अनन्तर "व्यास-प्रकाश"।

उसके अनन्तर "समालोचना-शिरोमणि"। उसके अनन्तर "ब्रह्म-विद्या-विलास"। उसके अनन्तर "तारक", "प्रचारक", "सुधारक", "पञ्चानन," "सिंहानन," "तरङ्ग-भङ्ग," "अनन्तरंग," "सहचरी," "पीयूष-मञ्जरी," "अमृतवती," "त्रिलोक-गजट," "पाताल-पताका" "नागरीसैाभाग्य-सैारभ", "भारत," "प्रबुद्ध-भारत," "सुप्त भारत," "विश्ववासी," "कविता-विलासी," "पुराणपंच," "विश्वेश्वर-समाचार"। हंसते हंसते गृहिणी के आनन्दाश्रुओं की झड़ी लग गई।

आंखों को अंचल से पोंछकर सरस्वती ने यशोराशि से उज्वल स्वामी के मुख की ओर ग्रोर एक बार देखा। स्वामी ने कहा, "अभी मेरे पास ग्रोर अनेक समाचारपत्र तथा पत्रिकाएं हैं!" सरस्वती ने कहा "उनको फिर देखूंगी; इस समय, यह बतलाओ कि ग्रोर क्या समाचार है?" विद्यावल्लभ ने कहा "बनारस के कलेक्टर साहब ने "मीमांसा-सूक्ति-मुक्तावली" की एक प्रति कलकत्ते ग्रोर एक विलायत भेजी है"। यह सुन सरस्वती बोली "यह नहीं; लाए क्या, सो ता बतलाओ"। विद्यावल्लभ ने उत्तर दिया "समालोचकों को कुछ चिट्ठियां हैं।" इस पर सरस्वती ने साफ साफ पूछा "रुपए कितने लाए?" विद्यावल्लभ ने कहा "जो कुछ तुमने दिया था उसमें से दो रुपए पैाने पांच आने बचा लाया हूं; सो देवदत्त के पास हैं"।

सरस्वती ने जिस समय सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना, उस समय संसार की विश्वासपात्रता ग्रोर साधुतासम्बन्धी उसका सारा सद्भाव उलट गया। उसने निश्चय किया कि दूकानवालों ने उसके स्वामी को अवश्यमेव ठग लिया ग्रोर पुस्तक मोल लेनेवाले हिन्दी के सारे रसिकों ने षड्यन्त्र करके दूकानवालों को ठग लिया। सरस्वती के मन में यह भी भावना हुई कि जिस देवदत्त को उसने अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा, उसने भी पुस्तक बेचनेवालों से मिलकर स्वामी की वञ्चना की! इन बातों का विचार करते करते उसे असह्य मनोवेदना होने लगी; जिससे अकाल ही में उसे प्रसूति की पीड़ा उत्पन्न हुई ग्रोर वह सूतिकागार ही में इस वञ्चक जगत् को अपने रहने के योग्य न समझ कर सर्वदा के लिये छोड़ गई*।

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

मुन्शी गंगाप्रसाद वर्म्मा

आज सरस्वती के अंक में आल्हाद से विराजते हुए गम्भीरभावपूरित जिस दिव्य चित्र का आप दर्शन कर रहे हैं वह वास्तव में ऐसे ही सच्चरित्रसम्पन्न महानुभाव का दिव्य चित्र है जो सुराऽसुरवन्दित वीणा-पुस्तक-धारिणी भगवती वेद तथा विद्यामाता,

मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा अबुधा बुधा गोपिनी
स्वेतं चीर शरीर नीर गहिरा गैारी गिरा जोगिनी,
वीनापानि सुबानि जानि दधिजा हंसा रसा आसनी
लंबोजा चिहुरारि भार जघना विघ्ना घना नाशनी,

आदि स्तुतिओं से संयुक्त, सरस्वती के ही अंक का लालित पालित लाल है ग्रोर सदैव मनसा वाचा कर्मणा से उसी माता का आज्ञानुवर्ती होने के कारण वागीश का वात्सल्यभाजन है; अस्तु, उसीके अंक में रहने के योग्य होने से अपने समुचित ठैार में स्थापित है। सभ्य समाज के सभासदों में कोई बिरलाही जन होगा जो इस परोपकार-रत देशहितैषी के नाम को न जानता हो। परन्तु हां, यह सम्भव है कि हमारे नवयुवक विद्यार्थी मित्रों में बहुतेरे अभी ऐसे होंगे कि जिन्हें इन महानुभाव के दर्शन का सुअवसर न प्राप्त हुआ हो। अस्तु उन्हींकी विज्ञप्ति के हेतु आज हम इस महानुभाव के जीवनचरित्र के लिखने में तत्पर होते हैं। राजर्षि भर्तृहरि का मत है कि इस

* बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखित गल्पगुच्छ की छाया।

परिवर्तनशील संसार में नित्य प्रति ही प्राणी जन्म लेते और मरते रहते हैं। परन्तु वास्तव में जन्म लेना उसीका सफल है जिसके द्वारा स्वदेश और स्वजाति का हित हो, अन्यथा विधाता की सृष्टि के कलंक स्वार्थी लोगों से तो सृष्टि भरी ही रहती है। जिन महानुभाव का यह चित्र है उनका जन्म लखनऊ नगर के नजीराबाद में खत्री जाति के टंडन कुल में तारीख १३ सितम्बर, सन् १८६३, ईसवी में हुआ। आपके पूज्य पिता का नाम श्रीयुत लाला नारायणदास जी था। वंशपरम्परानुसार नामकरण संस्कार होते समय आपका नाम बाबू गंगाप्रसाद वर्मा पड़ा। आपके सम्बन्ध में "यथा नामः तथा गुणः" की किम्वदन्ती पूर्ण रूप से चरितार्थ हुई, और होती क्यों न! पतितपावनी त्रैतापहारिणी श्री गङ्गा के प्रसाद में तद्गत ही विशुद्धि-गुण यह कैसे सम्भव है कि न होते। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" के सिद्धान्तानुसार आगामी देशहितैषी के लक्षण बालकपन ही से देख पड़ने लगे। आपके पूज्य पिता जी सीतापुर प्रान्तान्तर्गत एक राज्य के प्रवन्धकर्ता थे। इस कारण आपकी शिक्षा सीतापुर के गवर्नमेण्ट हाइ स्कूल में प्रारम्भ हुई और वहां से जब आप लखनऊ लैाट कर घर पर आए, तब आपने केनिङ्ग कालिज में शिक्षा पाना आरम्भ किया। किन्तु आप इस दशा में स्कूलशिक्षा की अपेक्षा समाचारपत्रों के अध्ययन में अधिक चित्त लगाते थे। "अवध अख़बार", "हिन्दू पेट्रियट", तथा "आर्य दपण" ही सदैव आप की आंखों के सम्मुख रहते थे। उदरभरने वाले स्वार्थी लोगों की भांति आप उदरपोषण की युक्ति सिखानेहारी पुस्तकों के कीड़े न थे, किन्तु साधारण चित्त से अपना स्कूल का काम करते और देशहितसम्बन्धी चर्चाओं में विशेष उत्साह दिखाते थे। बाल्यावस्था से ही आपको धर्म के भी तत्वान्वेषण की चिन्ता रहती थी। अस्तु जब सन् १८७५ में श्रीमान् परिव्राटबर भारतहितैषी वेदोद्धारक श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी का आगमन लखनऊ में हुआ और उनके व्याख्यानों की धूम नगर में फैली, तभी हमारे मान्यवर बाबू गङ्गाप्रसाद जी भी अपनी हार्दिक धर्म-जिज्ञासा-वश उस महात्मा के पावन उपदेश सुनने को जा पधारे और अपनी हंसप्रकृति से उस परमहंस के उपदेश से दुग्ध पान कर वितंडाबाद रूपी नीर को छोड़ देशहितैषिता और सत्यानुराग का चित्र अपने वालचित पर उस प्रवीण चितेरे से खचित कराकर लैाट आए और अपने विचार के परिपक्व करने में तत्पर ही थे कि दैवदुर्विपाकवश केवल २४ वर्ष की अवस्था में आपको समस्त गृहस्थी का दुसह भार सहन करना पड़ा, क्योंकि आपके पूज्य पिता जी का इस समय अनायास स्वर्गबास होगया था। किसी कवि ने सत्य कहा है कि चिन्ता चिता से भी बढ़ कर मनुष्य को दहन करनेहारी है। परन्तु वीर पुरुष अपने व्रत के निबाहने में चिता तथा चिन्ता किसी का ध्यान नहीं करते और न चिन्ताग्रस्त होने से अपने व्रत को छोड़ते हैं। किन्तु महानुभावता से अपने व्रत का जैसे हो सके प्रतिपालन ही करते हैं और क्यों न करें। मृगराज केशरी जो मदमत्त गज का मस्तक विदारनेहारा है, वह व्यथित दशा में भी घास नहीं खाता, किन्तु और भी उद्दण्डता से गजराज का मस्तक विदारता है। साहसी, गम्भीरआशय पुरुषों की भी दशा कुछ ऐसी ही है। वे चिन्ता-ग्रस्त होने पर कष्ट के समय अपने मन्तव्य पर और भी उद्दण्डता के साथ आरूढ़ होते हैं। हमारे लेख के नायक ने ऐसे ही समय में एक पत्र "हिन्दोस्थानी" नामक, जो इस समय आगरा देश तथा अवध में उर्दू के समाचारपत्रों में सर्व-साधारण के मन्तव्य का एकमात्र प्रतिनिधि कहे जाने योग्य है, उर्दू में प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच में भारतवर्ष के सैाभाग्य-वश एक जातीय महासभा "नेशनेल कांग्रेस" का आन्दोलन सन् १८८५ में प्रारम्भ हुआ। उस समय अवध की राजधानी से सबसे प्रथम इस

जातीय महासभा में जो स्वदेश ग्रैार स्वजाति-भक्त व्यक्ति सम्मिलित होने गया था, वह वही महापुरुष है जिसका चित्र पाठक महानुभाव ग्राप ग्रांखों के सम्मुख ग्राज देख रहे हैं। कबिवर बिहारी लालजी ने सज्जनों के विषय बहुत ठीक लिखा है—

"चटक न छांड़त घटतऊ सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न वर घटै रंगो चोल रंग चीर॥"

सावन के मल्लों की भांति बहुतेरे नेशनेल कांग्रेश के भक्त ग्रात्मश्लाग्रावश देख पड़े। परन्तु परीक्षा की कसैाटी पर कसने पर कितने लोग जातिभक्त निकले, वह भारतहितैषियों से छिपा नहीं है। कांग्रेस रूपी बालक ने तीन ही वर्ष की ग्रवस्था में बावनावतारवत् ग्रपना रूप विस्तार दिया। बहुतेरे ग्रदूरदर्शी, स्वार्थी, लोगों के मुख से इस राजभक्त सभा पर ग्राक्षेप होने लगे। राजविद्रोह का कलङ्क उसके सिर थोपा गया। उस समय के इस देश के लफटेनण्ट गवर्नर सर ग्राकलेण्ड कालविन महोदय ने कांग्रेस की ग्रोर ग्रपनी ग्ररुचि ग्रैार ग्रकृपा दिखा कांग्रेस के सिद्धान्तों में शङ्का ग्रैार विरोध का सिगनेल दिया। फिर क्या था, हां में हां मिलाकर ग्रपने कार्य सम्पादन करनेवालों की बन ग्राई। सर ग्राकलेण्ड कालविन के गण, मुसलमानों के पक्षपाती, ग्रलीगढ़ के बूढ़े सैय्यद, लखनऊ के मुन्शी नवलकिशोर, बनारसी राजा शिवप्रसाद, ग्रैार भूपाली मुन्शी इम्तियाज ग्रली ग्रपने चेलों में कांग्रेस के विरोध की डौंडी पीटने लगे। ग्रवध के ताल्लुकदारों ने भी बुद्धिमता का मुकुट पहिर लेना ही उचित जान चटपट कांग्रेस के विरुद्ध राजा भिनगा की हां में हां मिलाना प्रारम्भ कर दिया। नगर नगर कांग्रेस के विपक्ष सभाएं ग्रैार उपदेश होने लगे। कांग्रेस के पक्ष करनेहारों पर घुड़की, धमकी, डांट, फटकार के जनरव गढ़े जाने लगे। ऐसी दशा में साधारण पुरुष की कैान कहे, बड़ों बड़ों के व्रत डिगने लगे। परन्तु इतने पर भी तरुण बाबू गङ्गाप्रसाद जी ग्रपने व्रत से न डिगे ग्रैार "सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः' के ग्रादेशानुसार "ह्वै है वहि जो राम रचि राखा" कह कर ग्रपने कार्य में प्रवृत्त रहे। एक ग्रोर मुन्शी नवलकिशोर जी तथा मुन्शी इम्तयाज़ ग्रली सरीखे बिभवसम्पन्न लोग, राजा शिवप्रसाद तथा सर सैय्यद ग्रहमद के संयोग से प्रजा को कांग्रेस के बिपक्ष में घुमा रहे थे। दूसरी ग्रोर निस्सहाय, नवयुवक बाबू गङ्गाप्रसाद जी कांग्रेस के विरोधरूपी ग्रग्नि को ग्रपने बाहुबल से बुझाकर प्रजा को कांग्रेस का प्रतिपक्षी बनाने का उद्योग कर रहे थे। यह द्वन्द बहुत दिनों तक सन् १८८८ ई० में रहा। ग्रन्त को हमारे व्रतवीर नायक ने ग्रपने मित्रों तथा स्वर्गबासी श्रीमान् पण्डित ग्रयोध्यानाथ जीकी, जिन्हें मूर्तिमान कांग्रेस के पन्थ का ग्रादि ग्राचार्य या ग्रवतार भी कहा जावे तो भी ग्रनुचित न होगा, सहायता से ग्रवध में कांग्रेस की विजयपताका बांध दी ग्रैार उसी दिन से इस देश की प्रजा के विचारों को निष्पक्ष तथा सरल भाव से गवर्नमेण्ट तक पहुंचानेहारे प्रतिनिधि "एडवोकेट" नामक समाचारपत्र का ग्रापके द्वारा जन्म हुग्रा ग्रैार ग्राप ग्रवधदेशस्थित कांग्रेस की स्टैंडिंग कमेटी के सेक्रेटरी नियत हुए, जिस पद का कार्य ग्राज पर्यन्त ग्राप बड़ी ही योग्यता तथा प्रतिष्ठापूर्वक कर रहे हैं। हमारी उदार बृटिश गवर्नमेण्ट एक ग्रपूर्व गुणग्राहक गवर्नमेण्ट है। उसकी न्यायतुला में पंसगे का नाम ही नहीं है। वह सदैव योग्य पुरुष की योग्यतानुसार उसे समीचीन प्रतिष्ठा प्रदान करने में तत्पर रहती है। यद्यपि उदरम्भर लोगों ने बाबू गङ्गाप्रसाद जी के बिरुद्ध बहुत लोगों को भड़काया ग्रैार कांग्रेसी विशेषण का प्रयोग उनके नाम के साथ कर, ग्रपनी बुद्धि के विपर्यय-बश यह सोचा कि कदाचित् ऐसा करने से वह राजकीय मान के भागी न होंगे। परन्तु ग्रन्त में नीर क्षीर का भेद हुग्रा ही हुग्रा। जिस समय प्रजा ने ग्रापको म्यूनिसिपेल इलेक्शन में ग्रपना प्रतिनिधि